संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

मूल्य : रु. ६/-

मई २००६ हिन्दी

पूज्य बापूजी के अवतरण-दिवस पर बही सेवाकार्यों की गंगा...

* गरीबों, अनाश्रितों, विधवाओं में ११,००,००० किलो अनाज का वितरण ।
* १,२१,००,००० लोगों में छाछ-वितरण ।
* ३,३०,००० रोगियों में फल एवं सत्साहित्य का वितरण ।
* ६,००,००० नशामुक्ति पोस्टरों का वितरण ।
* ८,००,००० गरीब विद्यार्थियों में सुवाक्यों से युक्त नोटबुकों का वितरण ।

सत्संग से ही सद्‌गुण विकसित होते हैं और सर्वहितकारी परिवर्तन होता है । जीवन में सत्संग की अनिवार्य आवश्यकता है ।

'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए, जे पीड़ पराई जाणे रे...'

वर्ष : १६ अंक : १६१ मई २००६ वैशाख-ज्येष्ठ वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

जो देते हैं, वही पाते हैं

पृष्ठ : २

अगर जीवन महान बनाना है तो...

पृष्ठ : ९

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : "ऋषि प्रसाद", श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

गुरु संदेश

जो देते हैं, वही पाते हैं

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

परदुःखकातरता, स्वयं अमानी रहना व दूसरों को मान देने के सद्गुण होंगे तो आप सुखी रहेंगे । जो परहित नहीं करता और परायी भलाई नहीं सोचता, उसका अपना हित, अपना भला टिकता नहीं; चाहे वह साधु हो, चाहे गृहस्थी हो, चाहे अफसर हो, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो । आप जो देते हैं वही पाते हैं । आपका बोलना और आपके कर्म घूम-फिरकर आपके ही पास आते हैं । आप जो बोलते हैं वह घूमकर फिर आपके ही इलाके में आता है । ऐसे ही आप जो देते हैं वही आपके पास आता है । जो दूसरों को ठगते हैं उनको भी कोई-न-कोई बढ़िया ठग मिल जाता है । जो दूसरों को सताते हैं उनको भी कोई सतानेवाला मिल जाता है । जो दूसरों की तंदुरुस्ती, मन की प्रसन्नता, बुद्धि का विकास और दूसरों की भलाई में आनंद मानते हैं, उनके पास आनंद-ही-आनंद रह जाता है, भला-ही-भला रह जाता है । मुझे इस बात का अनुभव है ।

आपको पता है गुलाब गुलाबी क्यों है ? जो विज्ञान पढ़े हैं उन्हें पता है कि सूर्य के सात रंगों में से गुलाब ने गुलाबी रंग परावर्तित किया है, दूसरे अपने में रखे हैं; गुलाबी दिया तो गुलाबी रह गया । कोई फूल सफेद क्यों है ? उसने सफेद रंग लौटाया है इसलिए सफेद रह गया है ।
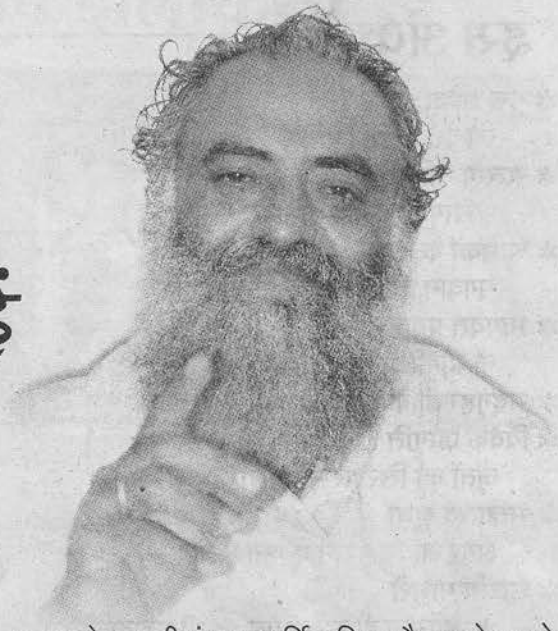
आदमी सम्माननीय क्यों है ? क्योंकि सम्मान ही देता रहा है इसलिए सम्माननीय है । आदमी अपमानित क्यों होता है ? क्योंकि उसने अपमान ही दिया है । आदमी चिंतित और दुःखी क्यों है ? चिंता और दुःख के विचार दूसरों को देता है तो खुद चिंता व दुःख के विचारों में डूब रहा है । 'मैं दुःखी हूँ, चिंतित हूँ... मेरा कोई नहीं...'- ऐसे नकारात्मक विचार उखाड़ के फेंक दीजिये । 'मैं ईश्वर का हूँ, ईश्वर मेरे हैं । संसार सपना है । प्रभु ! तू मेरा है न ?' - ऐसा चिंतन कीजिये । हम हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि आप सोच-विचार का रास्ता बदल दीजिये और

इन छः तीखी तलवारों को निकाल के फेंक दीजिये । कौन-सी तीखी तलवारें हैं ?

पहली है अत्यंत अभिमान में आकर बोलना

दूसरी है अंदर से द्रोह रखना

तीसरी है आसक्ति रखना, त्याग का अभाव

चौथी है अश्लील बोलना

पाँचवीं है क्रोधपूर्ण व्यवहार

छठी है अपना ही पेटपालू बन जाना, परिवार का, पड़ोस का या दूसरे का ख्याल न करना

तो आप जो चाहते हैं कृपा करके वह दूसरों को देना शुरू कर दीजिये ।

सत्संग बिन जीव अभागा

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जिसके जीवन में सत्संग नहीं वह भले ही बड़ा धनवान हो, बड़ा सत्तावान हो, बड़ा राजाधिराज हो किंतु वह अभागा तो है ही । संत तुलसीदासजी कहते हैं :

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना ।
श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥
(रामचरित., बाल कांड : ११२.१,३)

मनुष्य-जन्म पाकर जिसने अपने कानों से भगवान के ज्ञान की कथा नहीं सुनी, हरिरस का पान नहीं किया उसके कर्णरंध्र साँप के बिल के समान हैं । वह अभागा है, माँ का यौवन छीननेवाला तुच्छ जीव है । जिसने मनुष्य-जन्म पाकर अपनी जिह्वा से भगवान का नाम, हरिनाम उच्चारण नहीं किया, उसकी जिह्वा मेंढक की जिह्वा है।

जिसके जीवन में सत्संग नहीं है उसका जीवन सात प्रकार के कुलाभों से तबाह हो जाता है । वे सात कुलाभ कौन-से हैं ?

> सच्चाई विश्वास का माई-बाप है और विश्वास परम वरदान है, इसलिए सत्य का आग्रह रखना । यह आपको यशस्वी और प्रेमी बना देगा।

अधिक बोलना, व्यर्थ बोलना - पहली हानि ।

दूसरी हानि - सत्संग नहीं होगा तो तमस् बढ़ेगा फिर अधिक निद्रा आयेगी ।

तीसरा कुलाभ है - अधिक चटोरापन और भोजन अधिक खाने की आदत रहेगी ।

चौथी हानि होगी कि मरनेवाले शरीर के साज-शृंगार, टिपटॉप, फैशन में अधिक समय, शक्ति लगायेगा तथा शरीर का अभिमान बढ़ेगा । नहाये-धोये, जरा तिलक-विलक कर लिया, भगवदीय शृंगार कर लिया ज्ञान का प्रकाश करने के लिए, ठीक है । यह सात्त्विक शृंगार करना कोई बुरा नहीं है किंतु शरीर को अधिक सजाते-धजाते रहना, शरीर की शोभा को अपनी शोभा मानना यह बहुत हानिकारक है ।

पाँचवाँ दुर्गुण यह है कि अपने कुकर्मों के

सत्संग महिमा

जीवनरूपी वाटिका में सत्संग के सिंचन से ही
सद्गुणरूपी पुष्प विकसित होते हैं।
व्यक्ति के जीवन का परिवर्तन सत्संग के बिना नहीं हो सकता है।

कारण अथवा दूसरे के पास धन, वैभव या योग्यता अधिक होने के कारण अपने में हीन भावना आ जाती है । दुनिया के लोग मिलकर इतना घाटा नहीं कर सकते, जितना अपनी हीन भावना अपना घाटा करती है ।

छठा दुर्गुण यह आ जाता है कि मनुष्य धन का, योग्यता का, सत्ता का, लोग मेरे को मानते हैं उसका, मैं ऐसा हूँ - वैसा हूँ या कोई-न-कोई संसारी चीज का भूत खोपड़ी में घुसेड़ के अहंकारी हो जाता है।

सातवाँ दुर्गुण यह आ जाता है कि मन की व्यर्थ भटकान, शरीर की व्यर्थ भटकान, बुद्धि की व्यर्थ भटकान बढ़ जाती है ।

तो व्यर्थ भटकान न हो, अहंकार न हो, हीन भावना न हो, शरीर के ज्यादा श्रृंगार की भावना - वासना न हो, अधिक भोजन न हो, अधिक निद्रा न हो और अधिक बोलना न हो - इनकी सावधानी मनुष्य नहीं रखेगा तो इन सात बातों से तबाही सुनिश्चित है । इनकी जगह पर मनुष्य आठ सद्गुण भर दे तो बड़ा यशस्वी हो जायेगा ।

पहली बात है कि नींद में से उठे तब थोड़ा शांत हो जाय कि 'भगवान ! तुम शांत आत्मा हो । मन दौड़ता है तुम उसको देखते हो, सत्ता देते हो । मैं तुम्हारा, तुम मेरे ।' इससे आपका बड़ा भारी कल्याण होगा । **दूसरी बात** - अपनी बुद्धि और मन में उत्साह रखना तो आप यशस्वी हो जायेंगे । **तीसरी बात** - सत्य में निष्ठा हो । जरा-जरा बात में सफेद झूठ बोलना, जरा-जरा बात में धोखाधड़ी करना - इससे आप अपनी और दूसरों की हानि करते हो । सासु का विश्वास संपादन करना है तो बहूरानी ! सासु से सच्चाई से पेश आओ । ननद, भाभी, सासु, देवरानी, जेठानी, बहू को विश्वास में लेना है तो सच्चाई विश्वास का माई-बाप है और विश्वास परम वरदान है, इसलिए सत्य का आग्रह रखना । यह आपको यशस्वी और प्रेमी बना देगा । **चौथी बात** - नम्रता का सद्गुण लाओ । यह आपके लिए सीखने के द्वार, योग्यता बढ़ाने के सारे द्वार खुले कर देगा । **पाँचवाँ** - जो भी निर्णय और कार्य करो धैर्य रखके करो । इससे अपनी शक्तियों के व्यय और ह्रास से आप बच जाओगे । **छठा** आपके अंदर यह सद्गुण भर दो कि जरा-जरा बात में, जरा-जरा दुःख और सुख में बह जाने की आदत को रोको, थोड़ी सहनशीलता बढ़ाओ; सूखे तिनके की नाईं परिस्थितियों में फरफराओ मत । दुःख को भी सह लो, सुख को भी सह लो, मान को भी सह लो, अपमान को भी सह लो । ये आने-जानेवाले हैं और आपका आत्मा - आप रहनेवाले हो । **सातवाँ सद्गुण** है कि जीवन में कुछ-न-कुछ व्रत, नियम होना चाहिए । **आठवाँ** है संयम कि धन चाहिए-चाहिए, आखिर कितना ? खाना-खाना लेकिन कितना ? बोलना-बोलना आखिर कितना ? विनोद-मजाक करना आखिर कितना ? सबमें संयम होना चाहिए ।

जीवनरूपी वाटिका में सत्संग के सिंचन से ही सद्गुणरूपी पुष्प विकसित होते हैं । व्यक्ति के जीवन का परिवर्तन सत्संग के बिना नहीं हो सकता है । इसलिए जीवन में सत्संग की नितांत आवश्यकता है । जीवन में सत्संग नहीं होगा तो कुसंग होगा, कुकर्म होगा फलतः कुफल प्राप्त होगा, नीच योनियों में जाना होगा । सत्संग होगा तो सुचिंतन होगा, सुकर्म होगा तो सुफल होगा एवं सत्स्वरूप अकाल पुरुष की रहमत बरसेगी और मुक्ति भी होगी ।

जो एकादशी व्रत धरी । तो अतिशय पढीये हरी ।
यालागीं देव त्याचे घरीं । निरंतर तिष्ठत ॥

भावार्थ : जो एकादशी का व्रत करते हैं वे श्रीहरि को बहुत प्रिय होते हैं । इसलिए देवतागण भी उनके घर में निरंतर निवास करते हैं।

जो एकादशीचा व्रती । त्यासी तीर्थें पैं सेविसी ।
तेणें पुण्यें भगवत्प्राप्ती । क्षणमात्र न लागतां ॥

भावार्थ : जो एकादशी का व्रत करता है, उसकी सेवा तीर्थ भी करते हैं । एकादशी व्रत के पुण्यप्रताप से उसे भगवत्प्राप्ति भी हो जाती है । **- संत एकनाथ महाराज**

'मेरा जीवन भगवान के लिए है । मुझे उनका न होकर क्षणभर भी नहीं जीना है । भगवान मुझे अपना मानें चाहे न मानें, पर मैं कभी किसी दूसरे का होकर नहीं रहूँगा ।'

भगवान की प्रसन्नता ही उद्देश्य हो

जो सबके दोषों का बड़ी चतुराई के साथ निरीक्षण करता है, उस समय सारे जगत की बुद्धि एकत्र होकर उसमें आ जाती है पर वही मनुष्य अपनी उस बुद्धि को अपने दोषों को देखने में नहीं लगाता । यदि वह दूसरों के उन दोषों को देखना छोड़ दे, जो वास्तव में उन लोगों में हैं कि नहीं, कहा नहीं जा सकता तथा अपने दोषों को देखने में अपनी बुद्धि का प्रयोग करे और जो दोष समझ में आ जायें, उनको छोड़ता चला जाय तो शीघ्र ही उसका चित्त शुद्ध हो सकता है । साधक को चाहिए कि जो अपना नहीं है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, उसको अपना मानना, उस पर विश्वास करना छोड़ दे । जो अपनेको अनेक बार धोखा दे चुके हैं, उनका फिर कभी विश्वास न करे । कभी, किसी भी परिस्थिति में उनको अपना न समझे एवं जो प्रभु अनादि काल से अपने साथी हैं, जो सदा ही उसके हित में लगे हैं, जिनके साथ साधक का नित्य संबंध है, जिन्होंने कभी किसीको धोखा नहीं दिया, वेद, शास्त्र और संत लोग तथा अपना अनुभव भी जिसका साक्षी है, उन परम सुहृद प्रभु पर विकल्परहित विश्वास करके उनको अपना मान ले - यही साधक का परम पुरुषार्थ है ।

जो दोष अपने बनाये हुए हैं, उनको कोई दूसरा मिटा देगा, ऐसी आशा करना तथा उनको मिटाने में निराश होना - ये दोनों ही बातें उचित नहीं हैं, क्योंकि ये स्वाभाविक नियम के विरुद्ध हैं ।

लोग कहते हैं कि 'भगवान न्यायकारी हैं' परंतु साधक को तो यही समझना चाहिए कि 'वे तो सदैव दया करनेवाले हैं ।' यही कारण है कि वे अपनी दी हुई शक्तियों का दुरुपयोग करनेवालों को दण्ड नहीं देते । यदि न्याय करते तो झूठ बोलनेवालों की जीभ उसी समय शून्य कर देते, चोरी करनेवालों के हाथ शून्य कर देते । वे तो सदा प्राणी पर कृपा करते हैं और इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि यह किसी प्रकार मुझ पर विश्वास करके एक बार ऐसा मान ले कि 'मैं तेरा हूँ ।'

जिनका चरित्र सुननेमात्र से काम का सर्वथा नाश हो जाता है, जिनके कृपा-कटाक्ष से प्रेम प्राप्त होता है, जिनकी चरणरज के लिए उद्धव-सरीखे तत्त्ववेत्ता भी चाह करते हैं - उन गोपीजनों के चरित्र से भी साधक को यही शिक्षा मिलती है कि एकमात्र प्रभु को ही अपना मानना चाहिए, क्योंकि वे एकमात्र श्यामसुंदर को ही अपना मानती थीं । उन्होंने अपने - आपको भगवान को समर्पित कर दिया था । उनका मन भगवान का मन हो गया था । उनकी आँखें भगवान की हो गयी थीं । उनकी वाणी, प्राण और शरीर सब भगवान के थे । वे अपने संबंधियों और गायों को तथा समस्त पदार्थों को भगवान का ही समझती थीं । वे जो कुछ भी करती थीं, भगवान की प्रसन्नता के लिए, भगवान को सुख पहुँचाने के लिए ही करती थीं । उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में भगवान की प्रसन्नता का उद्देश्य रहता था ।

अतएव साधक को चाहिए कि वह जो कुछ करे अपने प्रेमास्पद की प्रसन्नता के लिए ही करे और तो क्या, भोजन करे तो इसलिए कि मेरे न खाने से मेरे प्रेमास्पद को कष्ट न हो जाय । भूखा रहे तो इसीलिए कि आज मेरे प्रेमास्पद इसीमें प्रसन्न हैं, इसलिए उन्होंने मुझे भोजन करने का मौका नहीं दिया । इसी प्रकार हर एक प्रवृत्ति में भगवान की प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ सदा उनसे प्रेम बढ़ाता रहे या उनकी प्रेमप्राप्ति की बाट जोहता रहे ।

साधक को अपना जीवन सर्वथा भगवान को समर्पित कर देना चाहिए । उसकी ऐसी सद्भावना होनी चाहिए कि 'मेरा जीवन भगवान के लिए है । मुझे उनका न होकर क्षणभर भी नहीं जीना है । भगवान मुझे अपना मानें चाहे न मानें, पर मैं कभी किसी दूसरे का होकर नहीं रहूँगा ।'

भागवत प्रवाह

नौ योगीश्वरों की कथा

(गतांक से आगे...)

जिसके मन में विषय-भोग की इच्छा, कर्म-प्रवृत्ति तथा उनके बीज वासनाओं का उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान वासुदेव में ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है । जिसका इस शरीर में न तो सत्कुल में जन्म, तपस्या आदि कर्म से तथा न वर्ण, आश्रम एवं जाति से ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान का प्यारा है । जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदि में 'यह अपना है और यह पराया' इस प्रकार का भेदभाव नहीं रखता, समस्त पदार्थों में समस्वरूप परमात्मा को देखता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्प से विक्षिप्त न होकर शांत रहता है, वह भगवान का उत्तम भक्त है । राजन् ! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अंतःकरण को भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं, भगवान के ऐसे चरणकमलों से आधे क्षण, आधे पल के लिए भी जो नहीं हटता, निरंतर उन चरणों की सन्निधि और सेवा में ही संलग्न रहता है, यहाँ तक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवन की राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृति का तार नहीं तोड़ता, उस राज्यलक्ष्मी की ओर ध्यान ही नहीं देता, वही पुरुष वास्तव में भगवद्भक्त, वैष्णवों में अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है । रासलीला के अवसर पर नृत्य-गति से भाँति-भाँति के पाद-विन्यास करनेवाले निखिल सौन्दर्य-माधुर्य निधि भगवान के चरणों के उँगली-नख की मणि-चन्द्रिका से जिन शरणागत भक्तजनों के हृदय का विरहजन्य संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदय में वह फिर कैसे आ सकता है ? जैसे चन्द्रोदय होने पर सूर्य का ताप नहीं लग सकता । विवशता से नामोच्चारण करने पर भी सम्पूर्ण पापराशि को नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान श्रीहरि जिसके हृदय को क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उसने प्रेम की रस्सी से उनके चरणकमलों को बाँध रखा है, वास्तव में ऐसा पुरुष ही भगवान के भक्तों में प्रधान है ।

जो धन-सम्पत्ति, शरीर आदि में 'यह अपना है और यह पराया' इस प्रकार का भेदभाव नहीं रखता, समस्त पदार्थों में समस्वरूप परमात्मा को देखता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्प से विक्षिप्त न होकर शांत रहता है, वह भगवान का उत्तम भक्त है ।

माया, माया से पार होने के उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोग का निरूपण :

राजा निमि ने पूछा : भगवन् ! सर्वशक्तिमान परम कारण विष्णु भगवान की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देती है, उसे कोई पहचान नहीं पाता; (और आप कहते हैं कि भक्त उसे देखा करता है ।) अतः अब मैं उस माया का स्वरूप जानना चाहता हूँ, आप लोग कृपा करके बतलाइये । योगीश्वरो ! मैं मृत्यु का शिकार एक मनुष्य हूँ । संसार के तरह-तरह के तापों ने मुझे बहुत दिनों से तपा रखा है । आप लोग जो भगवत्कथारूप अमृत का पान करा रहे हैं, वह उन तापों को मिटाने की एकमात्र औषधि है, इसलिए मैं आप लोगों की इस वाणी का सेवन करते-करते तृप्त नहीं होता । आप कृपया और कहिये ।

अब तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्षजी ने कहा: राजन् ! (भगवान की माया स्वरूपतः अनिर्वचनीय है, इसलिए उनके कार्यों के द्वारा ही उसका निरूपण होता है ।) आदि-पुरुष परमात्मा जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते हैं और उनके विषय-भोग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासकों की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पंचभूतों के द्वारा नाना प्रकार के देव, मनुष्य आदि शरीरों की सृष्टि करते हैं, उसीको माया कहते हैं । इस प्रकार पंचमहाभूतों के द्वारा बने हुए प्राणी शरीरों में उन्होंने अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किया और अपनेको ही पहले एक मन के रूप में और इसके बाद पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा

पाँच कर्मेन्द्रिय - इन दस रूपों में विभक्त कर दिया तथा उन्हींके द्वारा विषयों का भोग कराने लगे । वह देहाभिमानी जीव अन्तर्यामी के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता है और इस पंचभूतों के द्वारा निर्मित शरीर को आत्मा-अपना स्वरूप मानकर उसीमें आसक्त हो जाता है । (यह भगवान की माया है) । अब वह कर्मेन्द्रियों से सकाम कर्म करता है और उनके अनुसार शुभ कर्म का फल सुख तथा अशुभ कर्म का फल दुःख भोग करने लगता है एवं शरीरधारी होकर इस संसार में भटकने लगता है । यह भगवान की माया है । इस प्रकार यह जीव ऐसी अनेक अमंगलमय कर्मगतियों को, उनके फलों को प्राप्त होता है और महाभूतों के प्रलयपर्यन्त विवश होकर जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म को प्राप्त होता रहता है - यह भगवान की माया है । जब पंचभूतों के प्रलय का समय आता है, तब अनादि और अनंत काल स्थूल तथा सूक्ष्म द्रव्य एवं गुणरूप इस समस्त व्यक्त सृष्टि को अव्यक्त की ओर, उसके मूल कारण की ओर खींचता है - यह भगवान की माया है ।

जो उनकी शरण जाता है और माया चक्र से बचना चाहता है उसको वे बचा लेते हैं । **(क्रमशः)**

सद्गृहस्थों के आठ लक्षण

सद्गृहस्थों के लक्षण बताते हुए महर्षि अत्रि कहते हैं कि (१) अनसूया, (२) शौच, (३) मंगल, (४) अनायास, (५) अस्पृहा, (६) दम, (७) दान तथा (८) दया - ये आठ श्रेष्ठ विप्रों तथा सद्गृहस्थों के लक्षण हैं । यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :

(१) अनसूया– जो गुणवानों के गुणों का खण्डन नहीं करता, स्वल्प गुण रखनेवालों की भी प्रशंसा करता है और दूसरे के दोषों को देखकर उनका परिहास नहीं करता- यह भाव 'अनसूया' कहलाता है ।

(२) शौच– अभक्ष्य-भक्षण का परित्याग, निन्दित व्यक्तियों का संसर्ग न करना तथा आचार-(शौचाचार-सदाचार) विचार का परिपालन - यह 'शौच' कहलाता है ।

(३) मंगल– श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा शास्त्रमर्यादित प्रशंसनीय आचरण का नित्य व्यवहार, अप्रशस्त (निन्दनीय) आचरण का परित्याग - इसे धर्म के तत्त्व को जानने वाले महर्षियों द्वारा 'मंगल' नाम से कहा गया है ।

(४) अनायास– जिस शुभ अथवा अशुभ कर्म के द्वारा शरीर पीड़ित होता हो, ऐसे व्यवहार को बहुत अधिक न करना अथवा सहज भाव से जो आसानीपूर्वक किया जा सके उसे करने का भाव 'अनायास' कहलाता है ।

(५) अस्पृहा– स्वयं अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा संतुष्ट रहना और दूसरे की स्त्री की अभिलाष नहीं रखना- यह भाव 'अस्पृहा' कहलाता है ।

(६) दम– जो दूसरे के द्वारा उत्पन्न बाह्य (शारीरिक) अथवा आध्यात्मिक दुःख या कष्ट के प्रतिकारस्वरूप उस पर न तो कोई कोप करता है और न उसे मारने की चेष्टा करता है अर्थात् किसी भी प्रकार से न तो स्वयं उद्वेग की स्थिति में होता है और न दूसरे को उद्वेलित करता है, उसका यह समता में स्थित रहने का भाव 'दम' कहलाता है ।

(७) दान– 'प्रत्येक दिन दान देना कर्तव्य है' - यह समझकर अपने स्वल्प में से भी अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर प्रयत्नपूर्वक यत्किंचित् देना 'दान' कहलाता है ।

(८) दया– दूसरे में, अपने बन्धुवर्ग में, मित्र में, शत्रु में, तथा द्वेष करनेवाले में अर्थात् सम्पूर्ण चराचर संसार में एवं सभी प्राणियों में अपने समान ही सुख-दुःख की प्रतीति करना और सबमें आत्मभाव-परमात्मभाव समझकर सबको अपने ही समान समझकर प्रीति का व्यवहार करना- ऐसा भाव 'दया' कहलाता है । महर्षि अत्रि कहते हैं इन लक्षणों से युक्त शुद्ध सद्गृहस्थ अपने उत्तम धर्माचरण से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लेता है, पुनः उसका जन्म नहीं होता और वह मुक्त हो जाता है : **यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपि भवेद् द्विजः ।**
स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥
(अत्रि संहिता : २.४२)

विवेक जागृति

जूतों को सिर पर मत रखो

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

चौदह सौ वर्ष पहले की बात है, चीन के राजा ने भगवान बुद्ध के शिष्य बोधिधर्म को आमंत्रित किया । वे चीन पहुँचे तो वहाँ के राजा गणमान्य लोगों व मंत्रियोंसहित उनका स्वागत करने आये । बोधिधर्म को देखकर राजा हैरान हो गये कि एक खड़ाऊँ तो बोधिधर्म के पैर में है और एक सिर पर है ! मंत्री और गणमान्य लोग भी एक-दूसरे की तरफ देखने लगे ।

लोगों में कानाफूसी शुरू हुई : 'बोधिधर्म, बुद्ध के बाद जिनका स्थान आता है, ऐसे व्यक्ति इस तरीके से हमारे देश में आये, एक जूता सिर पर और एक जूता पैर में... !' राजा मुसीबत में पड़ गये । मौका पाकर राजा ने बोधिधर्म से कहा : ''यह आपने क्या किया ? हमने तो प्रचार किया कि आप बड़े उच्चकोटि के, आत्मशांति पाये हुए महात्मा हैं । बुद्ध के बाद अगर कोई हस्ती हैं तो ये महापुरुष हैं । इनके दर्शन करने आओ और आप इस प्रकार जूते पहनकर आये हैं कि लोग आपको पागल समझें । हमारे सारे प्रचार पर पानी फिर जायेगा । आपने तो मुसीबत कर दी महाराज ! आपने खड़ाऊँ अपने सिर पर क्यों रखी है ?''

उत्तम व्यक्ति वही है जो भोग-वस्तु मिलने पर उसका औषधवत् उपयोग करता है और नहीं मिले तो मस्त रहता है ।
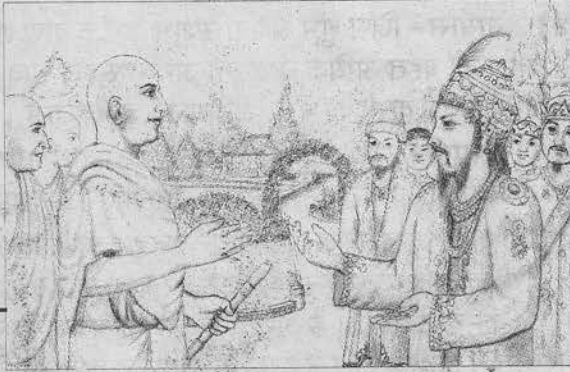
बोधिधर्म ने बड़ा सुंदर उत्तर दिया : ''हकीकत में राज्य-वैभव, धन-दौलत और संसार का कामकाज - ये तो नश्वर चीजें हैं । ये तुम्हारे चरणों की दास हैं । चरणों के दास को चरणों में ही रखना चाहिए । तुमने राजपाट को, ऐहिक अहंकार को, नश्वर चीजों को अपने सिर पर रखा है; व्यक्तित्व का, जातित्व का बोझ सिर पर रखा है; कर्मकाण्ड की ऐहिक उपलब्धियों को सिर पर रखा है । जिन्होंने पूरा बोझ सिर पर रखा है, दोनों जूते अपने सिर पर रखे हैं ऐसे लोगों से मिलने जाने के लिए मैंने खड़ाऊँ सिर पर रखी है कि कम-से-कम तुम्हारी पंक्ति में तो खड़ा हो सकूँ ।

जैसे जूता चरणों में ही रहता है पर उसे माथे पर रखो तो पागलपन दिखता है, ऐसे ही नश्वर चीजों की बातचीत और नश्वर चीजों का प्रभाव अपने मस्तक पर रखते हो तो तुम कैसे पागल हो !'' संसार की वस्तुएँ आपकी सेवक हैं, आपकी दास हैं, आपके चरणों की चीज हैं । इन चरणों की चीजों को जब आप ज्यादा महत्त्व देते हो तो ये बन जाती हैं स्वामी और आप बन जाते हो दास !

साधु को स्वामी क्यों कहते हैं क्योंकि लक्ष्मी अथवा जगत की किसी वस्तु का वह दास नहीं है । वह मन का स्वामी है, इन्द्रियों का स्वामी है, भोगों का स्वामी है, उत्तम भोक्ता है । उत्तम भोक्ता अर्थात् बिना वासना, इच्छा के भोग आ प्राप्त हों, फिर भी जरूरत हो तो उनका उपयोग करे, नहीं तो छोड़ दे वह उत्तम भोक्ता है । और दास कौन है ? जो भोगों के पीछे भटकता रहे, लटकता रहे, मिले तो पेट भरे नहीं और न मिले तो शांति हो नहीं । उत्तम व्यक्ति वही है जो भोग-वस्तु मिलने पर उसका औषधवत् उपयोग करता है और नहीं मिले तो भी मस्त रहता है । **पूरे हैं वे मर्द, जो हर हाल में खुश हैं...**

तो तुम हर हाल में खुश रहो, प्रभु में मस्त रहो और ऐसे वही रह सकता है जो जूतों को सिर पर रखना छोड़ दे ।

अगर जीवन महान बनाना है तो...

यदि आपके जीवन में ये दस बातें हैं तो जीवन में परमात्म-ज्ञान का प्रकाश सहज-सुलभ हो जायेगा ।

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

'श्रीमद्भागवत' के ग्यारहवें स्कंध के तेरहवें अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी को बोलते हैं :

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥

'शास्त्र, जल, प्रजाजन, देश, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार- ये दस वस्तुएँ यदि सात्त्विक हों तो सत्त्वगुण की, राजसिक हों तो रजोगुण की और तामसिक हों तो तमोगुण की वृद्धि करती हैं ।'

जीवन अगर महान बनाना है तो १० बातों का ध्यान रखो :

(१) शास्त्र का ज्ञान, सत्संग अपने जीवन में रखो ।

(२) आप पीते क्या हैं ? पानी कैसा पीते हैं ? गंगाजल पीते हैं, पवित्र जल पीते हैं कि जिस किसीका जूठा पीते हैं, इसका ध्यान रखो ।

(३) आप कैसे लोगों से मिलते हैं ? जो नास्तिक हैं, शराबी-कबाबी हैं उनसे दोस्ती है कि जिनको भगवान मिले हैं ऐसे महापुरुषों का संग है । आप सज्जनों का, आस्तिकों का संग करो, दुर्जनों, निगुरों, नास्तिकों का नहीं ।

(४) आप जिस घर में रहते हैं, जिस वातावरण में रहते हैं वहाँ के संस्कार कैसे हैं ? कसाई के विचारोंवाला घर है कि भगवद्भाववाला घर है ? जिस जमीन पर पहले कसाईखाना होता है, वहाँ जो अपना घर-मकान बनाते हैं, उनको भी मारकाट के विचार आते हैं, ऐसे कई तथ्य सामने आये हैं । तो आप जहाँ रहते हैं वह भूमि, वातावरण पवित्र है कि मोह-माया में गिरानेवाला है ?

(५) आप सूरज उगने के बाद उठते हो कि सूरज उगने के पहले उठते हो ? सूरज उगने के बाद नहाते हो कि पहले नहाते हो ? रात्रि को देर से भोजन करोगे तो मोटे हो जाओगे और बीमारियों का घर बन जाओगे । रात्रि को जल्दी व अल्प भोजन और जल्दी शयन तथा सुबह जल्दी जागरण - इस प्रकार आप करेंगे तो आपको लाभ रहेगा ।

(६) आप कर्म कैसे करते हैं ? अच्छे संस्कार भरनेवाले कर्म करते हैं कि गंदे संस्कार भरनेवाले कर्म करते हैं ? कर्म को बंधन बनानेवाले और नरकों में ले जानेवाले कर्म करते हैं कि कर्म-बंधन काट के भगवान में विश्रांति दें ऐसे कर्म करते हैं ?

(७) जन्मों-जन्मों के आपके संस्कार और दीक्षा-शिक्षा कैसी है ? उससे भी स्वभाव बनता है ।

(८) आप भगवद्ध्यान से अपना ज्ञान उत्पन्न करते हैं कि काम, क्रोध से अपने ज्ञान की दिशा बनाते हैं ? भगवद्ध्यान, सुमिरन से अपना रास्ता बनाते हैं कि बेईमानी करके, कपट का आसरा लेकर फिर अपनी बुद्धि को लगाते हैं ?

(९) मंत्र देनेवाले आपके गुरु कैसे हैं और मंत्र कैसा है ? 'अला बाँधूँ, बला बाँधूँ' वाला टूने-टोटके का मंत्र है कि वैदिक मंत्र है और मंत्र देनेवाले गुरु परमात्मप्रीतिवाले हैं कि ऐसे हैं ? समर्थ गुरु से मंत्र लेना चाहिए ।

(१०) भगवान बोलते हैं कि अच्छे संस्कार धारण करने का व्रत ले लो । किसीमें हजार बुराइयाँ हों फिर भी उस व्यक्ति में से भी गुण ले लो । किसीमें हजार गुण हैं और एक अवगुण है या दस अवगुण हैं तो उन अवगुणों को नहीं देखो । आप गुण ले लो एवं 'गुणों के आधार गुणनिधान प्रभु मेरे, भगवान का' - ऐसा चिंतन करने से आप उस नित्य ज्ञान में टिकने में तत्पर हो जायेंगे, आपका मंगल हो जायेगा ।

यदि आपके जीवन में ये दस बातें हैं तो जीवन में परमात्म-ज्ञान का प्रकाश सहज-सुलभ हो जायेगा ।

सत्संग माधुरी
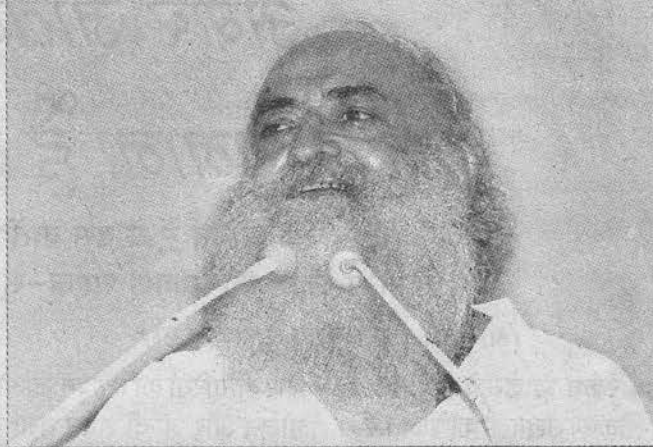
अपनत्व ही सच्चा प्रेम

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अहंकार ऐसा है कि इसे 'चाहिए, चाहिए और चाहिए...'- कभी इसका पेट भरता नहीं और प्रेम ऐसा है कि कुछ भी नहीं होते हुए भी दिये बिना रहा जाता नहीं।

एक तो भगवान में आस्था हो, दूसरा श्रद्धा हो, तीसरा विश्वास हो और चौथा हो कि 'भगवान मेरे हैं ।' फिर भजन अपने-आप होने लगेगा, निश्चिंतता अपने-आप आने लगेगी । एक लड़के ने अपने भाई को कहा : ''देख, माँ आयेगी तब तेरी खबर लूँगा । मार खिलाऊँगा !'' तो भाई हँसा, बोला : ''क्या तुम्हारी ही माँ है, मेरी माँ नहीं है ?'' लड़का बोला : ''मैं बताऊँगा... यह करूँगा...'' भाई बोला : ''तुम बताओगे तो मैं भी बताऊँगा । मेरी गलती होगी तो मेरी भलाई के लिए ही माँ मुझे मारेगी और तेरी बात गलत निकलेगी तो तेरे को मारेगी । मुझे क्या डराता है ? मेरी भी तो माँ है !'' ऐसे ही सोचें 'मेरे भी तो भगवान हैं ।' बस, आत्मीयता हो गयी तो निर्भयता आ गयी, प्रेम आ गया !

फिर भाई ने माँ को बताया कि 'माँ मेरे को यह ऐसे डरा रहा था तो मैंने इसको ऐसा सुनाया ।' माँ ने दोनों की बातें सुनकर उनको गले लगा लिया । ऐसे ही आप भगवान को माँ मान लो न ! उनसे प्रार्थना करो : 'हे प्रभु ! माँ में भी तुम, पिता में भी तुम । गुरु में भी तुम, बंधु में भी तुम । तुम जो करोगे हमारी भलाई के लिए करोगे । दुःख भी भेजोगे तो अहंकार और वासना मिटाने के लिए तथा सुख भेजोगे तो निराशा और शुष्कता मिटाने के लिए लेकिन महाराज ! तुम तो इन्हें भेज-भेज के थकते नहीं, हम थक गये भोग-भोग के । अब तो तुम अपने-आपको दे दो महाराज ! अपनी प्रीति दे दो, अपनी भक्ति दे दो । हम आपमें विश्राम पायें फिर हम हम न रहेंगे, कोई गम न रहेंगे । हम तो संसार की भक्ति में फँसे हैं । तुम्हारी भक्ति क्या होती है, हम जानते ही नहीं हैं फिर भी दे दो न !' बाहर से भले मूर्ति लगे किंतु आपका मूर्ति में भी भगवत्प्रेम है तो बस, भगवान है आपके लिए वह । 'भगवान हैं तो हमारे हैं ।' इस आत्मीयता में कितना बल

है ! अब 'हमारे हैं तो यह कर दो... वह कर दो...'- ऐसा करके भगवान को नौकर मत बनाओ । पहले प्रीति करके अपनेको उनमें मिलाओ, बस । पहले अपना मन दिया जाता है फिर उनका मन लेना । लोग बोलते हैं : 'फलाना प्रेम नहीं करता', 'फलानी प्रेम नहीं करती', 'मेरा पति ऐसा है, हमारे से स्नेह नहीं करता', 'पत्नी ऐसी है', 'बच्चे प्रेम नहीं करते', 'पड़ोसी प्रेम नहीं करते'... अरे ! दूसरा आपसे प्रेम करे ऐसी इच्छा मत करो भैया ! आप प्रेम के भिखारी मत बनो । आप भगवान से प्रेम करके अपना प्रेमयुक्त मन दूसरों को दो तो उन दूसरों का मन उस प्रेम को चिपक के आपके पास आ जायेगा । बापूजी के पास यह जादू है इसलिए सब बैठे हैं, पीछे-पीछे घूमते हैं । प्रेममय, सुखमय प्रभु-चिंतन करके प्रेममय बना अपना मन दूसरों के मन को छुआओगे तो उनका मन अपने-आप आपके पीछे-पीछे आ जायेगा और आप बन जाओगे बापूजी ! प्रेम में लेने की वासना ही नहीं होती, देने का सद्भाव होता है । भगवान शिव की जटाओं से गंगाजी निकलती हैं फिर भी भक्त प्रेम से शिवजी को पानी का लोटा चढ़ाता है । भगवान को रुपये- पैसे की क्या जरूरत है ? फिर भी भक्त उनको पैसे चढ़ाता है । चतुर्भुजी नारायण को क्या तुम्हारे चावल के चार दानों की कमी है ? चार फूलों की कमी है ? चार पैसों की कमी है ? लेकिन प्रेम देना जानता है तो भक्त मंदिर में चढ़ा देता है । यह रुपया-पैसा तो छोटी चीज है । सामनेवाले के जीवन में भगवान की प्रीति, भगवान का ज्ञान, स्वास्थ्य की बात और सात पीढ़ियाँ तरें ऐसा जो ज्ञान यहाँ दिया जाता है वह प्रेम के द्वारा ही दिया जाता है न ?

अहंकार ऐसा है कि इसे 'चाहिए, चाहिए और चाहिए...'- कभी इसका पेट भरता नहीं और प्रेम ऐसा है कि कुछ भी नहीं होते हुए भी दिये बिना रहा जाता नहीं । देने की आदत पड़ते-पड़ते आप अपना अहं दे डालते हैं तो वे (भगवान) भी अपना अहं दे डालते हैं । उनका अहं और आपका अहं वास्तव में एक ही है, केवल मिल जाता है तो हो गये तुम भगवत्स्वरूप, हो गये तुम सत्यस्वरूप, हो गये तुम ब्रह्मस्वरूप !

श्री गुरु वाणी

(श्री अर्जुनदेवजी की वाणी)

गुरु मेरी पूजा गुरु गोबिंदु । गुरु मेरा पारब्रहमु गुरु भगवंतु ।
गुरु मेरा देउ अलख अभेउ । सरब पूज चरन गुर सेउ ॥
गुर बिनु अवरु गाही मै थाउ । अनदिनु जपउ गुरू गुर नाउ ॥
गुरु मेरा गिआनु गुरु रिदै धिआनु । गुरु गोपालु पुरखु भगवानु ।
गुर की सरणि रहउ कर जोरि । गुरू बिना मै नाही होरु ॥
गुरु बोहिथु तारे भव पारि । गुर सेवा जम ते छुटकारि ।
अंधकार महि गुर मंत्रु उजारा । गुर कै संगि सगल निसतारा ॥
गुरु पूरा पाईऐ वडभागी । गुर की सेवा दूखु न लागी ।
गुर का सबदु न मेटै कोइ । गुरु नानकु नानकु हरि सोइ ॥

भावार्थ : गुरु ही मेरी पूजा के आधार हैं और गुरु ही समूची सृष्टि के पोषक हैं । मेरे लिए गुरु परब्रह्म हैं और महान प्रताप के धारक हैं । मेरे गुरु पूजनीय हैं और अदृश्य ब्रह्म से अभेद हैं । मैं सर्वपूज्य गुरु के चरणों की सेवा में रत हूँ । गुरु के बिना मुझे और कोई अवलम्बन नहीं, इसीलिए मैं रात-दिन गुरुनाम का ध्यान करता हूँ । गुरु ही मेरे ज्ञान हैं, सदा उन्हींको मैं हृदय में धारण करता हूँ । गुरु और हरि दोनों अभेद हैं । परम पुरुष भी गुरु ही हैं । हाथ जोड़कर मैं गुरु की शरण में रहता हूँ, क्योंकि गुरु के बिना मेरा और कोई नहीं । गुरु संसार-सागर से पार लगानेवाले जहाज हैं । गुरु की सेवा से यमदूतों से छुटकारा मिलता है ! अज्ञान के अंधकार में गुरु का उपदेश ही प्रकाश देनेवाला है । गुरु की संगति में सबका उद्धार हो जाता है । उच्च कर्मों से सच्चे गुरु की प्राप्ति होती है । गुरु की सेवा करने से कोई दुःख नहीं भोगना पड़ता । गुरु के वचनों को कोई नहीं मिटा सकता । गुरु नानक कहते हैं कि गुरु ही परमेश्वर हैं (दोनों अभेद हैं) । **(श्री गुरुग्रंथ साहिब)**

संत वचनामृत

(संत कबीर जयंती : ११ जून २००६)

संत कबीरजी की वाणी

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कबीरजी कहते हैं :

माया का सुख चार दिन, कहँ तू गहे गँवार ।
सपने पायो राज धन, जात न लागै बार ॥

माया का सुख चार दिन का है । जैसे सपने में राज्य-धन आदि मिला, आँख खुली तो चला गया, ऐसे ही यहाँ आँख बन्द (मृत्यु) हुई तो माया का सुख चला गया । हे गँवार ! तू कब तक इसमें उलझेगा ? - इस प्रकार का विवेक साथ रहता है तो मनुष्य इन पाँचों वैरियों से बच निकलता है ।

इन पाँचों से बन्धिया, फिर फिर धरै शरीर।
जो यह पाँचों बसि करै, सोई लागै तीर ॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार - इन पाँचों से सभी बँधे हैं । कोई काम से बँधा है तो कोई क्रोध से, कोई लोभ से बँधा है तो कोई मोह से तो कोई अहंकार से बँधा है । इन पाँचों को वश करने की कला जिसको आ जाती है, वही मुक्त होता है । ये पाँचों बुरे नहीं हैं, उपयोगी हैं किंतु हम इनका सदुपयोग नहीं करते तो ये हमारा ही उपभोग कर लेते हैं । काम बुरा होता तो भगवान पैदा ही क्यों करते ? क्रोध बुरा होता तो भगवान पैदा ही क्यों करते ? लोभ बुरा होता तो भगवान पैदा ही क्यों करते ? 'काम' नहीं होता तो सृष्टि की प्रवृत्ति कैसे होती ? भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है :

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

'हे भरतश्रेष्ठ ! सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ ।' **(गीता : ७.११)**

धर्म के अनुकूल होकर कामनापूर्ति करने की मना नहीं है, आवश्यकताओं की पूर्ति करने की मना नहीं है लेकिन जब हम धर्म के विरुद्ध कामनाओं की पूर्ति में लग जाते हैं तो कामनाएँ हमें अपना दास बना लेती हैं ।

आप अहंकार करें तो इस बात का करें कि 'मैं अमर आत्मा हूँ, चैतन्य हूँ, शरीर नहीं हूँ । शरीर की मौत के बाद भी रहता हूँ । मैं परमात्मा का सनातन अंश हूँ ।' - यह अहंकार तारनेवाला है । परंतु 'मैं सेठ हूँ... मैं नौकर हूँ... मैं काला हूँ... मैं गोरा हूँ...' - यह देह को 'मैं' माननेवाला अहंकार दुःखदायी है । ऐसे ही धन, पद, सत्ता, सौंदर्य आदि का अहंकार भी देह को 'मैं' मानने से ही होता है ।

अहंकार है तो एक छोटा-सा शब्द पर न जाने कितने-कितने विस्तारों में हमको भटकाता रहता है । जैसे - बेटे या बेटी की शादी करनी है । व्यवस्था है ५० हजार रुपये की किंतु अहंकार बोलेगा कि रुपये उधार लाओ और शादी करो । कर्ज लेकर भी आदमी अच्छा दिखना चाहता है, इसको दंभ बोलते हैं ।

घर में अपने ढंग से पूजा-पाठ कर रहे हैं और कोई भक्त मिलने आ गया तो पूजा-पाठ लंबा हो गया, यह दंभ है । दान कर रहे हैं और कोई देख रहा है तो उसके सामने ज्यादा दान किया - यह दंभ है । कोई संयमी है चाय नहीं पीता, प्याज नहीं खाता पर जहाज में ऐसा खाने-पीनेवालों के बीच बैठा है तो कोई उसको बुद्धू न माने इसलिए न चाहते हुए भी वह ऐसा खा-पी लेता है तो यह भी दंभ है । हैं तो साधक परंतु अभक्तों के बीच रहते हैं, इसलिए ऐसा-वैसा खा-पी लेते हैं - यह भी दंभ है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार - इन पाँचों का उपभोग नहीं सदुपयोग करो । कामना करनी है तो ईश्वर से मिलने की, अपने आत्मदेव को जानने की कामना करो, क्रोध करना है तो अपने दोषों पर क्रोध करो, लोभ करना है तो ध्यान-भजन का लोभ करो, मोह

संत वचनामृत

काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार – इन पाँचों का उपभोग नहीं सदुपयोग करो । कैसे ?

करना है तो आत्मा से करो, अहंकार करना है तो 'मैं अमर आत्मा हूँ' या 'मैं ईश्वर का शाश्वत, सनातन वंशज हूँ' - ऐसा अहंकार करो ।

जो पाँच विकार संसार की तरफ घसीट ले जाते हैं, उन्हें संसार के स्वामी के विषय में लगा दो तो ये पाँचों विकार निर्विकार नारायण से मिला देंगे ।

जब-जब मन में निषेधात्मक, नकारात्मक विचार आयें, संसार के व्यक्तियों और वस्तुओं से सुख लेने के विचार आयें, तब-तब मन को परमात्म-चिंतन में लगा दो ।

कोई पूछता है : 'बाबाजी ! क्या हम खायें-पीयें नहीं ?'

खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की मनाही नहीं है पर ये सब सुखबुद्धि से नहीं वरन् निर्वाहबुद्धि से करें । वासनापूर्ति के लिए नहीं वरन् वासनानिवृत्ति के लिए करें । अनेक जन्मों से पति-पत्नी, नर-मादा के सम्पर्क से जीव भटकता आया है, इसलिए उसमें कामवासना होना स्वाभाविक है । यदि विवेक-वैराग्य का बल हो तो आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत पाले, नहीं तो विवाह करके भी संयम से रहे । काम को राम में बदल दे ।

मन गोरख मन गोविन्द, मन ही औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥

मन की दृढ़ता से ही लोग गोरखनाथजी जैसे योगी बन जाते हैं । मन के पुरुषार्थ से ही मनुष्य भगवान कहलाता है । मन को बिगाड़कर लोग औघड़ बन जाते हैं । जो मन को यत्नपूर्वक अपने वश में रखता है, वह स्वयं ईश्वर है ।

'हम औघड़ बने हैं... हम गोरखनाथ सम्प्रदाय के हैं... हम भगवान के सम्प्रदाय के हैं...' तो मन जिससे मिलता है आपको वैसा बना देता है । इसलिए मन के साथ आत्मविचाररूपी मित्र जोड़ दो ताकि परमात्मा का साक्षात्कार करा दे ।

मन पाँच विकारों में से कभी किसीके साथ तो कभी किसीके साथ जुड़ता रहेगा तो हमें खपा देगा किंतु मन अपने आत्म-परमात्म स्वरूप से जुड़ा तो हमारा कल्याण कर देगा ।

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु सों मिलै, तो गुरु मिलै निसंक ॥

मन ही दाता बनता है । मन ही लालची बनता है । मन ही राजा बनता है और मन ही रंक बनता है । यदि यह मन गुरु से मिले, गुरु के ज्ञान से मिले तो निःसन्देह गुरु बन जायेगा ।

धन रहै न जोबन रहै, रहै न गाम न ठाम ।
कबीर जग में जस रहै, करि दे किसी का काम ॥

अंत में धन, जवानी, घर और गाँव कुछ नहीं रहेगा, जगत में केवल यश रहेगा । अतः किसीके काम आ जा । अपनी कामना मिटाने के लिए, अपनी वासना मिटाने के लिए सत्कर्म करने से चित्त में शांति आयेगी, मन में औदार्य सुख आयेगा, सात्त्विक गुण आयेंगे । उन सात्त्विक गुणों को सत्यस्वरूप परमात्मा को जानने में लगा देना चाहिए ।

प्रीति रीति सब अर्थ की, परमारथ की नाहिं ।
कहै कबीर परमारथी, बिरला कोइ कलि माहिं ॥

संसार के सारे प्रेम-व्यवहार स्वार्थ के लिए हैं, परमार्थ के लिए नहीं । कबीरजी कहते हैं कि कलियुग में कोई विरला ही परमार्थी होता है ।

बात बनाई जग ठग्यो, मन परमोधा नाहिं ।
कहैं कबीर मन लै गया, लख चौराशी माहिं ॥

जो ज्ञान की चिकनी-चुपड़ी बात बनाकर जगत को ठगते रहते हैं परंतु अपने मन को ज्ञानोपदेश कर शांत नहीं करते, ऐसे लोगों को मन चौरासी लाख योनियों में ले जाता है । किसीको डराकर, किसीको बहकाकर अथवा बात बनाकर ठगना - यह भी तुम्हारा मन करता है और किसीका ज्ञान-ध्यान बढ़ाकर उसका कल्याण करना - यह भी मन करता है । अतः मन को अपना मित्र बनाओ ।

शीतल शब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुझहि में, दुसमन भी तुझ माहिं ।

सदैव शीतल वाणी बोलो । अहंकारयुक्त वचन न बोलो । अगर मन को सँवार दिया तो तेरा प्रीतम तुझमें ही है और अगर मन को बिगाड़ दिया तो तेरा दुश्मन भी तुझमें ही है । इसीलिए कहा गया है :

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
कहैं कबीर गुरु पाइये, मन ही के परतीत

मन के हार जाने से हार हो जाती है और मन के विजयी होने से विजय होती है । मन के दृढ़ श्रद्धा-विश्वास से ही समर्थ सद्गुरु मिलते हैं, जो जीवन-नैया के खेवैया हैं ।

ॐ विचार मंथन

हम आपकी भूमिका ऐसी बनाना चाहते हैं कि मेरे सत्संगी गर्मी को सहने में बहादुर, सर्दी को सहने में बहादुर, हवा और आँधियों को सपना समझनेवाले बन जायें ।

परिस्थितियाँ हैं उन्नति के सोपान

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कैसा भी आदमी हो उसके समक्ष कभी अनुकूल परिस्थितियाँ आयेंगी, अनुकूल व्यक्ति मिलेंगे, अनुकूल वातावरण मिलेगा तो कभी प्रतिकूल परिस्थितियाँ आयेंगी, प्रतिकूल व्यक्ति मिलेंगे, प्रतिकूल वातावरण मिलेगा । हम भूल यह करते हैं कि अनुकूल परिस्थितियाँ, सफलताएँ आती हैं तो हममें अभिमान आ जाता है और प्रतिकूल परिस्थितियाँ, व्यक्ति, वातावरण मिलते हैं तो द्वेष, द्वन्द्व, विद्रोह व फरियाद आ जाती है । इन दोनों में ही जीव का पतन होता है । तो कल्याण करने का उपाय है कि अनुकूल परिस्थितियों में अभिमान न आये और प्रतिकूल परिस्थितियों में विषाद न हो । ये आयी हैं तो इनका सदुपयोग कर लो ।

सदुपयोग क्या है कि अनुकूल परिस्थिति, ातावरण, व्यक्ति - जो भी मिले, ईश्वरप्रीति के लिए हुतों तक उसका, अपनी योग्यता का सुखद, ानसंयुक्त विस्तार कर दो और प्रतिकूल परिस्थितियाँ ायीं तो पक्का समझो कि 'ये रहनेवाली नहीं हैं ।' नुकूल परिस्थिति भी रहनेवाली नहीं है, प्रतिकूल रिस्थिति भी सदा रहनेवाली नहीं है । अनुकूल व्यक्ति ी सदा नहीं रहेंगे, प्रतिकूल व्यक्ति भी सदा नहीं रहेंगे । नुकूल वातावरण भी सदा नहीं रहेगा, प्रतिकूल ातावरण भी सदा नहीं रहेगा । सदा रहेगा **'सोऽहम्'** - ह परमात्मतत्त्व ।

संत तुकारामजी भगवान से कहते हैं कि 'पहले तुम्हारे दर्शन हो जायें फिर मैं तुम्हारी सेवा, समाज की सेवा करूँगा । तुम्हारे दर्शन के बिना मन सेवा के नाम से कुछ-का-कुछ करवा लेता है । बड़े भयंकर आयोजन करवा लेता है और फँस जाता है ।' सच्ची सेवा तो तब होती है जब भगवान को पाने की प्यास जग जाय और भगवान में विश्राम पाने की कला आ जाय, अनुकूलता का सदुपयोग, प्रतिकूलता का सदुपयोग करते हुए सत्स्वरूप में शांत होना आ जाय । इसको बोलते हैं - विश्रांतिमय जीवन ।

विश्रांतिमय जीवन सभीकी माँग है । विश्रांति आलस्य को नहीं कहते हैं । विश्रांति प्रमाद को नहीं कहते हैं । विश्रांति मनोराज्य और कल्पनाओं को नहीं कहते हैं । यह भी गुजर जायेगा, वह भी गुजर जायेगा - इनको देखनेवाला सदा नित्यस्वरूप मेरा परमात्मतत्त्व रह जायेगा । उसीमें चुप हो जाओ । आत्मा में, स्व में शांत, चुप, निःसंकल्प दशा... फिर मन इधर-उधर जाय तो भगवन्नाम का उच्चारण करो और उसमें चुप होना सीखो । इस विश्रांति से बल बढ़ेगा । कोई भी परिस्थिति आये तो नयी परिस्थिति की इच्छा न करो । 'अभी ऐसा है, वैसा होगा तब सुखी होंगे... अभी ऐसा है, वैसा बनेगा तभी सुखी होंगे...' - इस प्रकार नयी परिस्थिति के निर्माण की इच्छा न करो और वर्तमान परिस्थिति में

उलझो नहीं । संयमपूर्वक शास्त्रानुकूल आचरण कर उसे **पसार** होने दो । विकार पैदा करनेवाली परिस्थिति आये तो तुरंत सावधान हो जाओ कि विकार भोगने से शक्ति का ह्रास होता है । इससे संसारी सुख का लालच मिटता जायेगा । ऊपर तो संसारी सुख का आवरणमात्र है, लेबलमात्र है, अंदर तो दुःख है । जब बाहर के सुख की इच्छा पैदा हो - 'ऐसा मिल जाय तो मजा आये... वैसा आये तो मजा आये... ' तो बोलो : 'फिर क्या ? फिर क्या ? **ततः किम् ? ततः किम् ?** ऐसा कर दूँ, वैसा कर दूँ, फिर क्या हो जायेगा ? पहले तो मैं कौन हूँ ? इसको जान लूँ । परिस्थितियाँ तो कैसी भी बनेंगी !' 'श्रीमद्भागवत' में वर्णन आता है कि हिरण्यकशिपु का हिरण्यपुर नगर सोने का था और उसने ६०,००० वर्ष राज्य किया परंतु अभी तो हिरण्यपुर की एक ईंट भी नहीं दिखती, इतिहास साक्षी है । तो कुछ पाकर, बनाकर हम सुखी होंगे ? नहीं, अभी हम सुखस्वरूप हैं, अभी हम चैतन्यस्वरूप हैं, अभी हम ज्ञानस्वरूप हैं । भगवान के अविभाज्य अंग हैं, नित्यमुक्त आत्मा हैं ।

'मकान मिल गया, हाश ! शांति...' - यह परिस्थितिवाली शांति है । 'नौकरी मिल गयी, हाश ! शांति...', 'बेटा खो गया था, मिल गया, हाश ! शांति... बड़ी शांति हो गयी ।' - यह काल्पनिक शांति है । वास्तविक शांति तो जहाँ आप हैं वहाँ सहज में शांति है ।

पाँच-पचीस खुशामदखोर लोग आपको अच्छा बोलें इससे आप अच्छे हो गये और पाँच-पचीस स्वार्थी लोग अथवा कुछ लोग बुरा कह दें तो आप बुरे हो गये - ऐसी बात नहीं है । बुराई के कारण कोई बुरा कहता है तो बुराई निकालकर फेंक दो । **अच्छाई के कारण कोई अच्छा कहता है तो अच्छाई तो गुणों में है, बुराई अवगुणों में है** । तो ये गुण-अवगुण अपने में थोपो ही मत भाई ! अपने में तो निर्मल स्वरूप देखो । सोचने का तरीका ज्ञानयुक्त कर दो बस, जीवन जीने की कला आ जायेगी ! किसीकी वाहवाही, कपड़ों का अच्छापन, मित्रों की खुशामद, परिस्थिति की अनुकूलता से आप सुखी हो गये तो आप जीवन जीना नहीं जानते । 'विपरीत परिस्थिति आयी तो वह हटे और अनुकूल परिस्थिति आये तब हम सुखी रहेंगे ।' - ऐसा सोचते हो तो आप जगत के दास हो गये । धनवान होते हुए भी कंगाल बन गये । यह बड़ी भारी गलती है ।

परिस्थितियों में सम रहकर आत्मा-परमात्मा के सुख का गुलाब खिलाना तो सत्संग से ही संभव है । सत्संगरूपी वचनों से ही इसकी कलम लगती है । इसके बिना और कोई चारा नहीं है । नहीं तो कितनी भी परिस्थितियाँ अनुकूल कर दो, दुःखों से नहीं छूटोगे । कैसे भी बन जाओ, कितनी भी पहुँच का उपयोग करके सबको अनुकूल बनाये रखो, फिर भी सब सदा अनुकूल नहीं रह सकते हैं । जो सदा एकरस है उस परमेश्वर से प्रीति करो और गुरुकृपा को अपनी तरफ खींचो ।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम् ।
जीवितं भुवनं भाति ततोऽहमिति नश्यति ।
तत्त्वमेकेन तज्ज्ञार्क सेवनात्स निषेव्यताम् ॥

हे रामजी ! तत्त्वज्ञरूपी सूर्य हैं उनका सेवन (संग) करने से यह सारा ही जगत ज्ञान से प्रकाशमान हो जाता है, सब पदार्थों को ढँक देनेवाला अहंभाव रूप अंधकार नष्ट हो जाता है, वस्तु का असली स्वरूप एक ही क्षण में भासने लग जाता है, अतः तत्त्वज्ञरूपी सूर्य की आप सेवा (संगति) करें ।

परिस्थितियाँ ही तो संसार है ।

संसरति इति संसारः ।

जो सरकता जाय उसे संसार कहते हैं ।

जीवात्मा तो नित्य है और सरकनेवाली परिस्थितियाँ अनित्य हैं । अब नित्य जीवात्मा अनित्य परिस्थितियों से, जो खुद ही सरक रहा है उस संसार से सदा सुखी कैसे रहेगा ? जो लोग आशीर्वाद देते हैं : 'सदा सुखी रहो, सदा सुखी रहो ।' उनसे पूछो, 'आप सदा सुखी हैं ?' कुछ लोग बोलते हैं : 'भगवान सदा सुखी रखें ।' तो भगवान से पूछो, 'वे सदा सुखी रहते हैं क्या ?' वे भी कभी 'हाय सीता !... हाय लक्ष्मण !...' करते हैं । कृष्णावतार में अपने बेटों के द्वारा ही अपमानित हो जाते हैं । शिव अवतार में पार्वती चली जाती है और दक्ष प्रजापति के यज्ञ में विध्वंस आदि होता है । अब परिस्थिति से सदा सुखी तो भगवान भी नहीं

विचार मंथन

परिस्थिति से सदा सुखी तो भगवान भी नहीं हैं लेकिन भगवान वास्तव में सदा सुखी हैं क्योंकि भगवान परिस्थितियों में सत्-बुद्धि नहीं रखते और वे सत् में टिके हैं इसलिए भगवान हैं।

लेकिन भगवान वास्तव में सदा सुखी हैं क्योंकि भगवान परिस्थितियों में सत्-बुद्धि नहीं रखते और वे सत् में टिके हैं इसलिए भगवान हैं ।

कुछ भी बन जाने से आप सदा सुखी नहीं रह सकते । कहीं भी चले जाने से आप सदा सुखी नहीं रह सकते । आप जहाँ भी हैं, जैसे भी हैं, 'ईश्वर सर्वत्र हैं तो यहाँ भी हैं, सदा हैं तो अब भी हैं और सबमें हैं तो हममें भी हैं ।' ऐसा चिंतन कर ईश्वर में टिकने की रीत जान लो तो सदा सुखी हो जाओगे । यह बड़ी बहादुरी है, यह बड़ा योग है, यह बड़ी भक्ति है, यह बड़ा पुरुषार्थ है, बड़े-में-बड़ा धंधा यह है ।

अब हम आपकी भूमिका ऐसी बनाना चाहते हैं कि मेरे सत्संगी गर्मी को सहने में बहादुर, सर्दी को सहने में बहादुर, हवा और आँधियों को सपना समझनेवाले बन जायें । भगवान क्या कहते हैं :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥
(गीता २.१४)

हे कुंतीनंदन ! सूक्ष्म बुद्धि की धनी माता कुंती के पुत्र ! इन्द्रियों के जो विषय हैं, जड़ पदार्थ हैं वे तो शीत अर्थात् अनुकूल और उष्ण माना प्रतिकूल हैं, सुख और दुःख देनेवाले हैं, आने-जानेवाले हैं, अनित्य हैं । हे भारतवंशी अर्जुन ! उनको तुम सहन करो । उनसे प्रभावित मत हो जाओ ।

मेरे लाल ! सुखद परिस्थिति आये तो सुख में डूबकर निस्तेज मत हो जाओ और दुःखद परिस्थिति आ जाय तो दुःख में डूबकर भयभीत मत हो जाओ । अनुकूल परिस्थिति आये तो उसके भोगी मत बनो और प्रतिकूल परिस्थिति आये तो उसके भी भोगी मत बनो । उनका उपयोग करनेवाले बनो । यह कैसा नजरिया है दयालु भगवान श्रीकृष्ण का !

शीत और उष्ण, सुख व दुःख, मान और अपमान - ये तो संसार है । ये तो आते रहेंगे । बीते हुए अपमान को महत्त्व देकर, उसे याद कर-करके अभी आप जहर क्यों बनाते हो, बेटे ! और मिले हुए मान को याद कर-करके आप लट्टू क्यों बनते हो, लाला ! मान मिल गया सो मिल गया । मान का अहं न आने दो । अपमान का दुःख न आने दो ।

दुःख और सुख दोनों में 'ख' माने आकाश । तो जो दुष्कर है वह 'दुः' हो गया और जो सुकर (सरल) है वह 'सु' हो गया । जैसे आँधी आयी, गर्म हवाएँ चलीं, तूफान आया तो आपको दुःख हुआ । ठंडी-ठंडी, मंद, सुगंधित हवा आयी तो आपको सुख हुआ । अच्छी हवाएँ भी आयीं आकाश में और गर्म हवाएँ तथा तूफान भी आया आकाश में तो 'ख' तो रहा । 'ख' अनुकूल आया तो 'सु' लगकर सुख हो गया और प्रतिकूल आया तो 'दुः' लगकर दुःख हो गया । आपका हृदयाकाश इस आकाश से भी ज्यादा ज्ञानसंपन्न चिद्घन चैतन्य है । इसमें भी दुःख-सुख के प्रसंग आने पर आपके मन ने 'दुः' सोच लिया तो आप दुःखी हो गये व 'सु' सोच लिया तो सुखी हो गये और अपनेको भुलावे में डाल दिया । दुःख-सुख, मान-अपमान, गर्मी-सर्दी को आप देखनेवाले हो लेकिन इनसे जुड़कर आप इनके खिलौने बन जाते हो, इसलिए संसार की परिस्थितियाँ आपको प्रभावित कर देती हैं । हालाँकि सब परिस्थितियाँ उन्नति के लिए होती हैं किंतु अज्ञान के कारण परिस्थितियों से अवनत हो जाते हो ।

परिस्थितियों का सदुपयोग करो । नयी परिस्थिति के निर्माण की वासना, आकांक्षा न रखो, उसकी बाट न देखो और जो परिस्थिति आयी है उसमें डूबो नहीं तो विश्राम मिलेगा । विश्राम से जीवात्मा परमात्मा में पुष्ट हो जायेगा । परमात्मा नित्य है, जीवात्मा भी नित्य है । दोनों सनातन हैं । जीवात्मा का जीवत्व छूटता जायेगा तो परमात्मा का पृथक्त्व भी छूटता जायेगा । वही परमात्मा आत्मा होकर सबको सत्ता, स्फूर्ति, चेतना दे रहा है।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष ।... फिर कर्तृत्व भाव नहीं रहेगा, भोक्तृत्व भाव नहीं रहेगा; सुख और दुःख नहीं होगा, जीवन्मुक्त हो जायेगा, ब्रह्मज्ञानी हो जायेगा, सबसे ऊँचे पद को पा लेगा ।

आत्मसंतुष्ट का सामर्थ्य

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

राजा चक्ववेण गुरु के ज्ञान में संतुष्ट रहते थे, बुराईरहित संसार की सेवा में रत और संयम से रहते थे । वे ऐश-आराम नहीं करते थे, प्रजा का पैसा प्रजा के हित में लगाते, यथायोग्य प्रजा की भलाई, प्रजा की सेवा करते और अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे । तो इससे अपनी सेवा हो गयी । ईश्वर को प्रीति करते थे तो ईश्वर की सेवा हो गयी । थोड़ी अपनी जमीन थी, उसमें खेती कर उसीसे गुजारा करते थे । उनकी रानी भी सादे कपड़े पहनती थी । चक्ववेण राजा होते हुए भी सतत संतुष्ट योगी हो गये । **संतुष्टः सततं योगी...**

एक दिन नगर में कोई उत्सव हुआ । कुछ बड़े घर की महिलाएँ चक्ववेण की पत्नी से मिलने गयीं । उन महिलाओं ने कीमती रेशमी वस्त्र एवं रत्नजड़ित सोने के आभूषण पहने थे । उन्होंने देखा कि चक्ववेण की पत्नी खद्दर (हाथ से काता हुआ कपड़ा) की सादी साड़ी में है । घर भी सादा-सूदा, खटिया भी सादी-सूदी, चाँदी का पलंग भी नहीं ! चक्ववेण की पत्नी व घर देखकर वे बोलीं : ''तुम राजा चक्ववेण की रानी और तुम्हारे पास कोई गहना-गाँठा नहीं, हीरे-जवाहरात नहीं... ! कैसी तुम्हारी जिन्दगी है !'' चक्ववेण की पत्नी बोली : ''हम राजकोश से पैसा नहीं लेते । हमारा खेत है । मेरे पति खेत जोतते हैं, हक का खाते हैं और राज्य भी करते हैं । समाज से कुछ लेते नहीं, जो कुछ हमारे पास है, उससे सेवा करते हैं। हमें तो शांति है, संतोष है, आनंद है ।''

''अरे ! काहे का आनंद-आनंद ? तुम तो महारानी हो और चक्ववेण राजा का इतना यश है ! तुम्हारे से अच्छे कपड़े तो हमारी नौकरानियाँ पहनती हैं ।''- ऐसा करके चक्ववेण की रानी के अंदर विपरीत संस्कार डालकर वे चली गयीं। अब चक्ववेण की पत्नी रूठ के बैठ गयी ।

राजा चक्ववेण शाम को आये तो बोले : ''रानी ! आज तुम खुश नहीं हो । क्यों उदास हो ? वैसे तो रोज फूल खिला हुआ होता है तुम्हारे दिल का, आज मुरझाया कैसे ?'' रानी : ''आप तो हैं साधु बाबा जैसे । मैं रानी होकर भी ऐसे कपड़े पहनती हूँ और मेरे पास कोई गहना भी नहीं है । मैं कैसी रानी ? इससे तो नौकरानी अधिक सुखी होती है ।''

राजा : ''तो क्या चाहिए तुमको ?''

''जैसी दूसरी महिलाएँ थीं...''

''अरे ! दूसरी महिलाओं को तो सुविधाएँ थीं, सुख था, संतोष नहीं था । तुमको अंतरात्मा का संतोष है, मेरे को भी है। हम अपने कर्म को कर्मयोग बनाते हैं ।''

''आप क्या अंतरात्मा का संतोष-संतोष कहते रहते हो ? बाहर का भी कुछ चाहिए न ? यह तो मैंने आज

''ऐसे राजा के नाम की दुहाई से यह लंका का द्वार मैं यहाँ ढहाता हूँ तो वह भी ढह जायेगा ।'' और वह द्वार ढह गया । ''अभी यहाँ एक-एक करके मैं गिराता हूँ तो पूरी लंका तहस-नहस हो जायेगी ।''

'ऐसा शृंगार होना, ऐसी लाली होना, ऐसा टिपटॉप होना...' ऐसों के पेट में तो भूख है और पीठ पर हलुआ बँधा है। हृदय में तो अशांति है और बाहर बड़ा मकान है, बड़ा फर्नीचर है... कैसा जीवन है!

सेठानियों को देखा तो मेरे मन में हुआ कि मेरे को गहने-गाँठे, हीरे-जवाहरात हों तो मैं भी सुखी रहूँ।''

''अरे! भोली है तू। बाहर की चीजों से सुखी होना यह अहंकार का सुख है। अंतरात्मा का सुख होना यह कर्मयोग का, भक्तियोग का सुख है।''

''यह सब ठीक है। आपका उपदेश तो मेरे को बहुत मिल गया पर अब मेरे को भी थोड़ा ऐसे रहना है।''

चक्ववेण ने देखा, 'हलके संग से इसकी बुद्धि हलकी हो गयी है। अब क्या करें? राजकोश से प्रजा का पैसा लेकर, प्रजा का कर लेकर अपनी रानी के गहने-गाँठों में लगाना - यह तो प्रजा के कर की चोरी होगी, यह सेवा नहीं होगी।' कितने श्रेष्ठ राजा थे!

फिर राजा चक्ववेण ने सोचकर अपने ईमानदार मंत्री से कहा : ''जाओ, रावण को बोलो कि राजा चक्ववेण का हुक्म है - एक मन सोना उधारी नहीं, दया-धर्म में नहीं, कर के रूप में दो। हमारा कर लगता है क्योंकि तुम हमारे राज्य पर से उड़ के जाते हो।''

चक्ववेण का राज्य छोटा था और लंकेश का बड़ा था। मंत्री रावण के पास गया और बोला : ''तुम्हारे पर एक मन सोने का कर डाला है राजा चक्ववेण ने।'' तो रावण बहुत हँसा कि ''चक्ववेण राजा इतना छोटा और मेरे पर कर डालता है! ऐसे पागल राजा हैं धरती पर! हा हा हा हा हा... ! वह राजा तो ऐसा ही है लेकिन मंत्री तुम्हारे को भी अक्ल नहीं है कि मैं कौन हूँ?''

''मुझे पता है तुम लंकेश हो, रावण हो। नौ ग्रह बाँधे हैं तुमने किंतु हमारे जो राजा चक्ववेण हैं न, वे आत्मसंतोष को पाये परम सिद्ध पुरुष हैं।''

''मंत्री! वह राजा तो पागल है, तुम भी पागल हो। चले जाओ बाहर।'' मंत्री चला गया तथा समुद्र के किनारे थोड़ी मिट्टी लेकर लंका की प्रतिकृति बनायी एवं पीला-पीला सुवर्णमय घास रगड़कर उस पर छिड़क दिया। दूसरे दिन सुबह मंत्री ने जाकर रावण से कहा : ''देखो, तुमको अपनी लंका तबाह करनी है या रखनी है?''

''हैं! क्या बोलता है?''

''मैंने लंका की प्रतिकृति बनायी है समुद्र के किनारे। चक्ववेण की दुहाई देकर उधर लंका की प्रतिकृति को गिराऊँगा तो यह गिर जायेगी।''

''ऐसा कैसे हो सकता है?''

''तुम चलकर देखो।''

रावण गया। मंत्री ने कहा : ''देखो, यह है लंका की प्रतिकृति। यह लंका का मुख्य द्वार है, यह लंका का दूसरा द्वार है, यह आपका राजमहल है, यह परकोटा है। यह सब मैंने रात भर में बनाया है।

अब देखो, जो अपने-आपमें संतुष्ट रहते हैं एवं समाज की सेवा करते हैं तथा बदले में ईश्वर से, समाज से कुछ नहीं चाहते हैं, आहा! बुराईरहित चक्ववेण! यथायोग्य भलाई करते हैं और भलाई का फायदा चाहते नहीं - ऐसे राजा के नाम की दुहाई से यह लंका का द्वार मैं यहाँ ढहाता हूँ तो वह भी ढह जायेगा।''और वह द्वार ढह गया। ''अभी यहाँ एक-एक करके मैं गिराता हूँ तो पूरी लंका तहस-नहस हो जायेगी।'' लंकेश घबराया कि राजा चक्ववेण के नाम की दुहाई में इतनी ताकत है! यह मंत्री पूरी प्रतिकृति को गिरा देगा तो हमारी लंका गिर जायेगी। रावण बोला : ''जितना सोना चाहिए कर में ले जा। किसीको बोलना नहीं कि रावण घबरा गया है। मेरी लंका को नहीं ढहाना।'' मंत्री एक मन सोना लेकर आया तथा पत्नीसहित चक्ववेण जहाँ बैठे थे, वहाँ सोना दिया।

> **"जाओ, रावण को बोलो कि राजा चक्ववेण का हुक्म है - एक मन सोना उधारी नहीं, दया-धर्म में नहीं, कर के रूप में दो।"**

चक्ववेण बोले : ''लंकेश ने कैसे दिया?''

'ऐसे-ऐसे...' सब बात मंत्री ने बतायी तो चक्ववेण की पत्नी की आँख खुली कि 'जो आत्मज्ञान में रहते हैं, चिन्मयस्वरूप में रहते हैं, निष्पाप रहते हैं - ऐसे मेरे पति के नाम की दुहाई से मंत्री लंका ढहा सकता है। ऐसा आत्मा का बल है। ऐसे पति का सान्निध्य और सच्चा ज्ञान छोड़कर मेरे को बाहर से आयी हुई ऐश-आराम और गहने-गाँठों की गुलाम विलासिनी स्त्रियों का कुसंग लग गया। हाय! मैं तो गंगा-स्नान करूँगी।'

कुसंग लगा कि 'ऐसा शृंगार होना, ऐसी लाली होना, ऐसा टिपटॉप होना...' ऐसों के पेट में तो भूख है और पीठ पर हलुआ बँधा है। हृदय में तो अशांति है और बाहर बड़ा मकान है, बड़ा फर्नीचर है... कैसा जीवन है!

चाहे भक्त की दृष्टि से चलो, चाहे प्रेमी की दृष्टि से चलो, चाहे तत्त्ववेत्ता की दृष्टि से चलो पर चलो अपने उस परमेश्वरीय सुख की तरफ। उसके सिवाय जो कुछ मिला और उसमें रुके तो आखिर क्या ?

भक्त, प्रेमी और ज्ञानी

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान श्रीकृष्ण के पास कितना वैभव और कितनी गरीबी ! इतना वैभव, इतना ऐश्वर्य कि द्वारिका सोने की ! वैभव का कोई पार नहीं, कोई छोर नहीं और इतनी गरीबी कि नंगे पैर भागना पड़ता है, ऋषियों के आश्रम से भिक्षा लेकर जीना पड़ता है ! इतना सामर्थ्य कि कनिष्ठिका ऊँगली पर गोवर्धन पर्वत उठाते हैं और इतनी असमर्थता कि नंद बाबा की खड़ाऊँ भी वे उठा नहीं सकते ! यशोदा माँ के कपड़े धोने की थापी (सोंटा) उठाते-उठाते कृष्ण थक गये और आखिर में लेट गये, फिर उठाने की कोशिश की। श्रीकृष्ण-लीलाओं से पता चलता है कि कमजोरी भी आती है और बल भी आता है। निर्बलता भी आती है और बल भी आता है। यश भी आता है, अपयश भी आता है। दरिद्रता भी आती है और वैभव भी आता है। ये आते-जाते हैं लेकिन स्वयं (अपना आत्मस्वरूप) सदा रहता है।

जो भक्त होते हैं वे भगवान के बलवान रूपों का चिंतन करते हैं, करना भी चाहिए। भक्त के जीवन में बल की अपेक्षा है। परंतु जो प्रेमी होते हैं, तत्त्वज्ञानी होते हैं उनके लिए भगवान के बलवान रूप की आराधना करना जरूरी नहीं है। प्रेमी कहता है कि 'निर्बल हैं तो भी हमारे हैं और बलवान हैं तो भी हमारे हैं, नृत्य करते हैं तो हमारे हैं और 'गीता' कहते हैं तो हमारे हैं, असुरों का दमन करते हैं तो हमारे हैं और रण छोड़कर भाग जाते हैं तो भी हमारे हैं, मक्खन माँगते हैं तो हमारे हैं और ब्रह्माजी को वैभव देते हैं तो भी हमारे हैं। जैसे भी हैं हमारे हैं।' प्रेमी हमारे मानकर प्रेम करके तर जाता है। ज्ञानी भगवान को अपना स्वरूप मानते हैं, 'जो भगवान का आत्मा है, वही मेरा आत्मा है। वे ही हमारी आँखों को देखने की, मन को सोचने की सत्ता देते हैं। अंतर्यामी होकर रहते हैं तो भी हमारे हैं, लीला करते हैं तो भी हमारे हैं। जैसे भगवान शाश्वत हैं, वैसे मेरा आत्मा भी शाश्वत है। जैसे भगवान सत्-चित्-आनंद स्वरूप हैं, मेरा चैतन्य भी वही है।'

ज्ञानी तत्त्वरूप से भगवान को मानते हैं। उनको भी बल-निर्बलता की परवाह नहीं। ऐश्वर्य-अनैश्वर्य की तत्त्ववेत्ता के जीवन में कोई महत्ता नहीं। ऐश्वर्य-अनैश्वर्य की प्रेमी के जीवन में भी कोई महत्ता नहीं पर जीव के जीवन में महत्ता है। जीव को यशस्वी काम करना चाहिए तो सुखी होगा, अपयश के काम से दुःखी होगा। जीव दुःख नहीं चाहता है पर ब्रह्मवेत्ता यश को सपना समझते हैं, अपयश को भी सपना समझते हैं। ईश्वर की दृष्टि तथा ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि एकाकार होती है और प्रेमी अपना 'मैं' ईश्वर में ही मिला देता है कि जैसे हैं हमारे हैं।

चाहे भक्त की दृष्टि से चलो, चाहे प्रेमी की दृष्टि से चलो, चाहे तत्त्ववेत्ता की दृष्टि से चलो पर चलो अपने उस परमेश्वरीय सुख की तरफ। उसके सिवाय जो कुछ मिला और उसमें रुके तो आखिर क्या ? ततः **किम् ? ततः किम् ?**

चाहे जितने तूफान आयें या चलें फिर आँधियाँ।
इरादे हैं मजबूत तो छू लेंगे बुलंदियाँ ॥

बच्चों के लिए उपयोगी बातें

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥

'मूर्खजन कठोर भाषण एवं निंदा द्वारा बुद्धिमानों को पीड़ा देते हैं । कठोर भाषण एवं निंदा करनेवाला पाप का भागी होता है । उन्हें क्षमा करता हुआ बुद्धिमान दुःख से मुक्त हो जाता है ।' **(विदुरनीति : २.७४)**

✻ गंदे, अश्लील शब्दों का उच्चारण न करो, किसीको गाली न दो । ऐसा करना असभ्यता की निशानी है व इससे अपना हृदय भी दूषित होता है ।

✻ पुस्तक के पन्नों को थूक लगाकर पलटना नहीं चाहिए ।

✻ दाँतों से नख काटना या चबाना नहीं चाहिए, नहीं तो हानिकारक जीवाणु मुँह द्वारा शरीर में चले जायेंगे ।

✻ पैर, घुटना, सिर और शरीर को हिलाते रहना बुरी आदत है, इससे बचें । ऐसा करने से एकाग्रता भंग होती है ।

✻ किसी भी सत्कार्य को कभी असंभव न मानें । उत्साही मनुष्य के लिए कठिन कार्य भी सुगम हो जाते हैं ।

✻ दूसरे से अपनी सेवा यथासंभव न करायें, अपना कार्य स्वयं करें ।

✻ कार्य करते समय यह याद रखें कि भगवान हमारे संपूर्ण कार्यों को देख रहे हैं, इससे आप गलत व बुरे कार्यों से बच जायेंगे ।

✻ जीवन में से दुर्गुण-दोष हट जायें और सद्गुण-सदाचार आयें, इसके लिए भगवान को सच्चे हृदय से प्रार्थना करें ।

✻ दिनचर्या बनाकर तत्परता से उसका पालन करें, इससे समय नष्ट होने से बचेगा । समय का सदुपयोग करें, दुरुपयोग नहीं ।

✻ सबको अपने प्रेमभरे व्यवहार से संतुष्ट करने की कला सीखें । किसीसे वैर न बाँधें । दूसरों के कलह को भी अपने नम्रता एवं प्रेम भरे बर्ताव और समझाने की कुशलता से निवृत्त करने का प्रयत्न करें ।

✻ अपने रहन-सहन, पहनावा, व्यक्तिगत जरूरतों आदि पर कम-से-कम खर्च करें । इससे आप अनावश्यक खर्च और पराधीनता से पार हो जायेंगे ।

✻ किसी भी अंगहीन, दुःखी, नासमझ को देखकर हँसी नहीं उड़ानी चाहिए बल्कि यथासंभव उसकी मदद करनी चाहिए । सबके हित की चेष्टा करें । इससे आंतरिक प्रसन्नता प्राप्त होगी ।

✻ अपना ध्येय सदा ऊँचा रखें । अपने कर्तव्य-पालन में सदा उत्साह व तत्परता रखें । कभी भी उद्दण्डता न करें । सदाचार और सादगी पर विशेष ध्यान रखें ।

लक्ष्य न ओझल होने पाये,
कदम मिलाकर चल ॥
सफलता तेरे कदम चूमेगी,
आज नहीं तो कल ॥

ॐॐ सजग... ॐॐ सतर्क...
ॐॐ स्नेह-संपन्न...

सात गुणों से महके विद्यार्थी-जीवन

उत्साहसंपन्नं अदीर्घसूत्रं
क्रियाविद्येगं व्यसनैश्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढौसुहृदं च
सिद्धिं स्वयं याति निवासहेतौ ॥

'उत्साही, अदीर्घसूत्री, क्रिया की विधि को जाननेवाला, व्यसनों से दूर रहनेवाला, शूर, कृतज्ञ तथा स्थिर मित्रतावाले मनुष्य को सफलताएँ, सिद्धियाँ स्वयं ढूँढ़ने लगती हैं ।'

हे विद्यार्थी ! कल्याण करनेवाली ये सात बातें अच्छी तरह से अपने जीवन में लाना । उत्साहरहित नहीं उत्साही बनो । दीर्घसूत्रता नहीं अदीर्घसूत्रता हो । आज का पढ़ने का पाठ कल पढ़ेंगे, बाद में करेंगे, ऐसा नहीं । जिस समय का जो काम है वह उस समय कर ही लेना चाहिए, पीछे के लिए नहीं रखना चाहिए । काम करने की विधि को ठीक तरह से जान लो, फिर काम शुरू करो । फास्टफूड, डबल रोटी, पिजा, कोल्डड्रिंक्स, चाय-कॉफी, पान मसाला - ये तो सत्यानाश करते, करते और करते ही हैं । इसलिए इनके सेवन से बचो । डरपोक जैसे विचार नहीं, शूरवीर जैसे विचार करो । किसीका उपकार न भूलो । अस्थिर मित्र नहीं, सज्जन-अच्छे मित्र बनाओ । परम स्थिर मित्र तो परमात्मा है, उसका तुम ध्यान करो । बाहर भी अच्छे, चरित्रवान, सत्संगी स्थिर मित्र करो ।

ये सात गुण जिस विद्यार्थी के जीवन में हैं, जिस मनुष्य के जीवन में हैं, आज नहीं तो कल सफलता उसके चरण चूमती है ।

चाहे जितने तूफान आयें या चलें फिर आँधियाँ ।
इरादे हैं मजबूत तो छू लेंगे बुलंदियाँ ॥

अद्भुत निर्णय

एक बार बादशाह अकबर अपने छोटे शहजादे को गोद में लेकर उसके साथ खेल रहा था । इतने में उसकी बेगम वहाँ आयी । बादशाह ने बात-ही-बात में बेगम को दरबार में एक न्यायाधीश का पद खाली होने के बारे में बताया । साथ ही यह भी कहा कि वह इस पद पर अपने नवरत्नों में से एक, महा बुद्धिमान बीरबल को नियुक्त करना चाहता है । यह सुनकर बेगम ने जिद पकड़ ली कि उसके भाई को ही न्यायाधीश बनाया जाय । बेगम अपनी बात पर अड़ गयी और उसने तुरंत अपने भाई को महल में बुलवा लिया ।

बादशाह जानता था कि न्यायाधीश के पद के योग्य व्यक्ति तो केवल बीरबल ही है और बेगम का भाई तो अक्ल का अंधा है । फिर भी बेगम को बुरा न लगे इस दृष्टि से उसने कहा : ''हम दोनों की परीक्षा लेकर देख लेते हैं । परीक्षा में जो सफल होगा उसे न्यायाधीश बनायेंगे ।''

दूसरे दिन बादशाह दरबार में बैठा हुआ था । बीरबल और बेगम का भाई भी अपने-अपने आसन पर बैठे थे । दरबार का काम-काज पूरा होने के बाद बादशाह ने कहा : ''कल एक अजीब घटना घटी । एक व्यक्ति ने मेरे महल में घुसकर मेरी दाढ़ी खींच ली । ऐसी बेअदबी करनेवाले को क्या सजा देनी चाहिए ?''

यह सुनकर पूरा दरबार स्तब्ध रह गया । सब सोचने लगे, 'राजा की दाढ़ी खींचनेवाला कौन हो सकता है ?'

बादशाह ने बेगम के भाई की ओर देखकर कहा : ''तुम इसका फैसला करो ।'' बेगम झरोखे में बैठी बड़ी उत्सुकता से कान लगाये हुए थी कि उसका भाई क्या फैसला सुनाता है ।

बेगम का भाई खड़ा हो गया और बिना कुछ सोचे-विचारे ही फैसला सुनाने लगा : ''बादशाह की दाढ़ी खींचनेवाले की अक्ल ठिकाने लगानी चाहिए । उस नालायक, बेशर्म, कमीने के हाथ काट डालो, जिससे वह

विद्यार्थियों के लिए

दुबारा कभी बादशाह की दाढ़ी खींचने की हिम्मत न कर सके..." फिर रुककर बोला : "परंतु महाराज ! वह गुनहगार है कहाँ ?" बेगम के भाई का फैसला सुनकर दरबारियों की गुनहगार को देखने की उत्कंठा बढ़ गयी । बेगम तो भाई का फैसला सुनकर चौंक उठी और झरोखे में खड़ी हो गयी । बादशाह ने हलकी-सी मुसकान के साथ तिरछी नजर से बेगम की ओर देखा । अड़ियल बेगम को उद्विग्न देखकर उसके मन में बड़ी गुदगुदी हो रही थी । फिर उसने बीरबल से कहा : "तुम इस निर्णय के बारे में क्या सोचते हो ? क्या गुनहगार के हाथ कटवा डालने चाहिए ?"

जिसकी बुद्धि प्रतिदिन जप-ध्यान करने से सात्त्विक व कुशाग्र हो गयी थी, वह बीरबल काफी समय से आँखें बंद कर विचार में डूबा हुआ था कि 'बादशाह के महल में चौकीदार हाजिर हों, उस हालत में कोई महल में घुस जाय और दाढ़ी खींचे, ऐसा कभी नहीं हो सकता । दाढ़ी खींचनेवाले आदमी की गर्दन बादशाह तुरंत ही उड़ा दें, यह बिल्कुल निश्चित है । पर बादशाह ने उसे सजा नहीं दी और क्रोधित हुए बिना ही दरबार में प्रसन्नचित्त से पूरी घटना कह सुनायी । इसलिए यह तो निश्चित है कि दाढ़ी खींचनेवाला महल का ही कोई-न-कोई सदस्य है । और महल के सदस्यों में भी बादशाह की दाढ़ी खींचकर उनके मन को हर्षानेवाला छोटे शहजादे के सिवा और कौन हो सकता है ?' बीरबल बोला : "हुजूर ! मेरा फैसला दूसरी तरह का है । जिसने आपकी दाढ़ी खींची है उसके हाथों में आपको सोने के कड़े पहनाने चाहिए और गोद में बिठाकर प्यार करना चाहिए ।"

बादशाह हँस पड़ा । उसने शहजादे को दरबार में बुलाया और कहा : "यह रहा मेरी दाढ़ी खींचनेवाला गुनहगार ! कल यह मेरी गोद में बैठा हुआ था और अपने नन्हे-नन्हे हाथों से मेरी दाढ़ी खींच रहा था । अब बताओ, इसके हाथ काट डालें या इसके हाथों में सोने के कड़े पहनायें ?"

सारा दरबार आनंद और विस्मय से मुग्ध हो गया । बेगम चुपचाप बैठी देखती ही रह गयी । बादशाह ने शाहजादे को गोद में बिठाकर उसके हाथों में सोने के कड़े पहनाये । बेगम बीरबल की कुशाग्र बुद्धि का लोहा मान गयी, उसने अपने भाई को न्यायाधीश बनाने की जिद छोड़ दी ।

जहाँगीर के शासन में हुआ गोवध-बंदी का आदेश !

काबुल पर जहाँगीर ने विजय का झंडा लहराया । उस युद्ध में अब्दुर्रहीम खानखाना[1] ने अनोखा शौर्य दिखाया । दरबार में जहाँगीर ने रहीमजी का सत्कार करते हुए कहा : "आपकी वीरता से मैं बहुत खुश हुआ हूँ, जो इच्छा हो माँगो ।"

सम्राट के वचन सुनकर रहीमजी दो घड़ी विचार में पड़ गये । फिर धीरे-से खड़े होकर जहाँगीर को कुरनीश बजाके विनयपूर्वक कहा : "जहाँपनाह ! मेरे पर आप खुश हुए हैं तो मैं एक चीज माँगता हूँ, आज से आपके राज्य में गोहत्या न हो ।"

रहीमजी के ऐसा कहते ही दरबार में सन्नाटा छा गया : "अरे, रहीमजी ने यह क्या माँगा ! न माँगा धन, न माँगा पद, न माँगी जागीर... और गोरक्षा की भीख क्यों माँगी ?"

वचनबद्ध जहाँगीर ने रहीमजी की वह माँग स्वीकार की और राज्यभर में गोवध बंद करने का आदेश दे दिया ।

१. अकबर के सेनापति बैरम खाँ ख़ानखाना के पुत्र जो 'भक्तकवि रहीम' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

''मेरे अभिमत में किसी भी संस्कृति का खजाना इतना समृद्ध नहीं है जितना कि हमारा है । हमने इसका मूल्य नहीं जाना है । जैसे पाश्चात्य लोगों ने लुभावनी भौतिक चीजें खोजी हैं, उसी प्रकार हिन्दुत्व ने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीजें धर्म, अध्यात्म तथा आत्मा में खोजी हैं ।''

सर्वोच्च न्यायालय एवं गाँधीजी की दृष्टि में संस्कृति व राष्ट्रीयता

हिन्दू जीवन-पद्धति के मूल्यों के प्रचलन से ही हिन्दू संस्कृति का अभ्युदय हुआ है, जिसने इस देश के लोगों को एक राष्ट्र के बंधन में जोड़ रखा है । इस पक्ष को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी 'प्रदीप जैन प्रकरण' (ए.आई.आर. १९८४ एस.सी. १४२०) में प्रभावशाली ढंग से निम्नलिखित शब्दों में रखा गया है : ''यह इतिहास का एक रोचक तथ्य है कि भारत को सहस्राब्दियों में उद्विकसित एक समान संस्कृति के कारण राष्ट्र के रूप में गढ़ा गया है, न कि किसी समान भाषा अथवा इसके क्षेत्रों के आधार पर अथवा निरंतर एकक्षेत्रिय राजनैतिक शासनाधिकार के कारण यह अस्तित्व में आया है । यह सांस्कृतिक एकता किसी अन्य बंधन की अपेक्षा अधिक आधारभूत व सतत है, जो कि देश के लोगों को जोड़े रख सकती है - जिसने इस देश को एक राष्ट्र के अटूट बंधन में बाँधा है ।''

महात्मा गाँधी ने हिन्दू जीवन-पद्धति को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है । इसकी परिणति हमारी संस्कृति में हुई है । वे कहते हैं : ''मेरे अभिमत में किसी भी संस्कृति का खजाना इतना समृद्ध नहीं है जितना कि हमारा है । हमने इसका मूल्य नहीं जाना है । यदि हम अपनी संस्कृति का अनुपालन नहीं करते हैं तो एक राष्ट्र के रूप में हम आत्महत्या कर रहे होंगे । जैसे पाश्चात्य लोगों ने लुभावनी भौतिक चीजें खोजी हैं, उसी प्रकार हिन्दुत्व ने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीजें धर्म, अध्यात्म तथा आत्मा में खोजी हैं लेकिन इन महान एवं सुंदर चीजों पर हमारी दृष्टि नहीं जाती है । हम पश्चिमी विज्ञान की भौतिक प्रगति की चकाचौंध से प्रभावित हैं । मैं इस प्रगति से मोहित नहीं हूँ ।''

वस्तुतः, हिन्दुत्व में ऐसा कुछ है जिसने इसे आज तक जीवित रखा है । इसने बेबीलोन की, पर्सीयन तथा मिश्र की सभ्यताओं का विनाश देखा है । तुम अपने चारों तरफ देखो, रोम कहाँ है और कहाँ है यूनान ? आज तुम कहीं भी गिब्बन का इटली या प्राचीन रोम नहीं देख सकते । इटली जाने पर क्या तुम्हें प्राचीन रोम दिखायी देगा ? ग्रीस (यूनान) जाओ, क्या वहाँ विश्वप्रसिद्ध सबसे बड़ी सभ्यता के दर्शन होते हैं ? दूसरी ओर भारत आते हुए किसीको अत्यंत प्राचीन आलेखों का अध्ययन करने दो और तुम्हारे चारों तरफ देखने दो । तब उसे यह कहने में कठिनाई नहीं होगी कि 'हाँ, मैं यहाँ प्राचीन भारत को आज भी जीवित देख रहा हूँ ।' यह सच है कि यहाँ-वहाँ गोबर के ढेर लगे हैं किंतु उनके नीचे भरपूर खजाना दबा हुआ है और यह क्यों बचा रहा है, इसका कारण है कि हिन्दुत्व ने अपने समक्ष जो लक्ष्य निर्धारित किये हैं, वे भौतिक नहीं अपितु आध्यात्मिक विकास पर आधारित हैं । हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा स्वराज्य हमारी आवश्यकताओं के प्रतिबंधन व आत्मनिषेध पर आधारित रहे हैं, न कि आवश्यकताओं की अभिवृद्धि व आत्म-अनुग्रह पर ।

(माई पिक्चर ऑफ फ्री इंडिया, पृष्ठ १०)

वास्तविक सौंदर्य आत्मा में है

सर्व सौन्दर्य तो आत्मा में भरा पड़ा है । गलती केवल इतनी ही है कि हम उलटी दृष्टि से बाह्य पदार्थों में उसका निरूपण करते हैं । विजातीय व्यक्ति में या जगत के किसी भी दृश्य पदार्थ में मोह पाने योग्य किसी रम्य को स्वीकार कर उसके पीछे पड़ना - यह स्वयं की परछाई के मोह में पड़कर उसे पकड़ने के लिए दौड़ने जैसा पागलपन है । सूर्य पानी में अपने प्रतिबिंब के प्रति मोह का अनुभव करे, ऐसी यह बात है । अपने चेहरे के सौन्दर्य का अनादर करके उसके प्रतिबिंब के सौन्दर्य के मोह में पड़ने जैसी बालसुलभ चेष्टा है । जो सौन्दर्य सच्चिदानंद आत्मा में है, उसका अनुभव करने के बदले विजातीय व्यक्ति में, दृश्य पदार्थों में जहाँ वह नहीं है, वहीं उसे मानना यह बड़ी भूल है । हम बैठे हैं उस रेलगाड़ी में ही गति है, फिर भी सामने दिखायी देनेवाले वृक्षों में गति को मानने जैसी भूल है ।

एक युवती बहुत रूपवती है । उसके दर्शनमात्र से बहुत-से लोगों को खूब आकर्षण और मोह पैदा होता है एवं परिणामस्वरूप कामविकार का जन्म होता है । परंतु उसके पिता या भाई से पूछिये । उनको तो मोह या विकार जन्मे ऐसा कोई सौन्दर्य उसमें दिखता नहीं । उसके पति को भी रूप का नित्य परिचय होने से दूसरों की तरह मात्र रूप के कारण मोहजन्य खिंचाव नहीं होता । दूसरे सामान्य व्यक्तियों को भी उस युवती से कम सुन्दर ऐसी दूसरी युवतियों में मोह हो, तब यह रूपवान युवती भी कोई विशेष आकर्षक नहीं लगती और ज्ञानी सत्पुरुष को तो अद्भुत सौन्दर्य का मूर्तिमंत नमूना सामने होने पर भी कोई मोहजन्य आकर्षण नहीं होता । अपनी सर्वांग सुन्दर सगी बहन की अपेक्षा दूसरों की साधारण रूपवान बहनें हमेशा सामान्यतया हर एक युवक को अधिक सुन्दर लगती हैं । खुद का कामदेव जैसा रूपवान भाई होने पर भी हर एक कन्या को दूसरा साधारण युवक ही अधिक आकर्षक लगेगा । भाई-बहन के संबंध में विकारजन्य मोह नहीं होता । हमको रूपवान लगता विजातीय व्यक्ति कई बार दूसरों को बिल्कुल आकर्षक नहीं लगता । एक ही व्यक्ति सामान्य और कामुकता भरी दृष्टि में क्रमानुसार कम और अधिक सुन्दर लगता है । सचमुच, उत्तम सौन्दर्य हमारी अंतरात्मा में ही है, सामने की बाह्य आकृति में नहीं । यदि बाह्य आकृति में होता तो प्रत्येक को सौन्दर्य का और वह भी एक समान मात्रा में अनुभव होता । परंतु ऐसा होता नहीं है, यह तो सबका अनुभव है । सत्य बात तो यह है कि हमारी अंतरात्मा में रहे सौन्दर्य का अज्ञानजन्य कल्पना से या कामुकता से हम बाह्य आकृति में आरोपण करते हैं, इसलिए वह हममें खिंचाव पैदा करती है । आत्मज्ञानी को ऐसा नहीं होता क्योंकि उनमें ऐसी अज्ञानजन्य परिणति का अभाव होता है । यह सब सोचेंगे तो हमारे मन को विजातीय मोहाकर्षण से बचाने के लिए जरूरी आंतरिक और मानसिक बल हम जरूर प्राप्त कर लेंगे ।

दूसरी तरह से देखने पर इस जगत में सचमुच कुछ सुन्दर या असुन्दर नहीं है । जिसको जो अच्छा लगे उसके लिए वही सुन्दर है ।

नास्ति किंचित् स्वभावेन सुन्दरं अपि वा असुन्दरम् ।
यद् यस्मै रोचते तत् भवेत् तस्य सुन्दरम् ॥
(पंचतंत्र)

मानव की, प्रेमी की दृष्टि ही सामनेवाले व्यक्ति

को, वस्तु को आकर्षक या अनाकर्षक बनाती है । इस तरह आकर्षण का मूल तो प्रेमी की दृष्टि अर्थात् स्वयं का आत्मा ही है । प्रेमी की दृष्टि चर्मचक्षु के द्वारा नहीं अपितु मन की आँखों से - प्रेम की आँखों से ही देखती है । शेक्सपियर कहते हैं : "Love looks not with eyes but with the mind." ''प्रेम आँखों से नहीं मन से देखता है ।'' और इसीसे चाहे कैसा भी गंदा बालक क्यों न हो माता की नजर में तो सुन्दर ही लगेगा ।

सौन्दर्य रूप प्रभु-आत्मा है : दूसरी दृष्टि से सोचें तो चाहे कैसा भी रूपवान शरीर क्यों न हो, वह निरंतर गंदगी बहानेवाले गटर जैसा है । उससे चैतन्य के अलग होने पर तुरंत उसमें दुर्गन्ध उठने लगती है और वह सड़ने लगता है । यही बताता है कि शरीर में निहित आत्मा सुन्दर होने से ही शरीर सुन्दर दिखायी देता है । शरीर का सौन्दर्य आत्मा के सौन्दर्य की छायामात्र है, वह पर प्रकाशित सौन्दर्य है । सचेतन शरीर की भी स्वच्छता का हम ध्यान नहीं रखेंगे तो चाहे कितनी भी सुन्दर रूपमूर्ति क्यों न हो, वह कैसी खराब लगेगी इसकी हम कल्पना कर सकते हैं । इस तरह चैतन्यदेव की उपस्थिति और सक्रियता के कारण शरीर में रूप की चमक आ जाती है । चैतन्य की अभिव्यक्ति के कारण ही विश्व की हर एक वस्तु में हमको कहीं-न-कहीं सौन्दर्य दिखता है । चैतन्य के चले जाने से वह सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । आकर्षक लगती हरियाली में से उसका चेतन चले जाने पर वह सूखी और नीरस दिखायी देने लगती है । इस तरह वस्तु में दिखता सौन्दर्य तो उसके अविनाशी आत्मा के प्रतिभारूप होता है अथवा तो द्रष्टा ने अपनी निजी कल्पना से निज आत्मा के सौन्दर्य का उसमें आरोपण किया है । वस्तु में स्वतः स्वयं का सौन्दर्य नहीं होता । इस दृष्टि से जगत में सही अर्थ में सौन्दर्य-दर्शन करने का मतलब है वस्तु में, व्यक्ति में - प्रभु-दर्शन, आत्मदर्शन करना । जगत में दिखायी देते तमाम सौन्दर्य प्रभु की केवल छाया है । सौन्दर्यरूप प्रभु हमारा आत्मा स्वयं ही है । प्रभु के सिवाय अन्य कहीं, किसीमें भी सौन्दर्य नहीं है । केवल आत्मदेव के सहारे ही सब कुछ है, जिनकी उपस्थिति के प्रभाव से शरीर जैसी गंदी वस्तु भी सौन्दर्यवान दिखायी देती है तो आत्मदेव स्वयं ही कितने रूपवान होंगे ! फिर रूप के कारण मोह करना हो तो आत्मा में कितना मोह करना चाहिए, यह हम तर्क से भी सोच-समझ सकते हैं । **- श्री मलूकचंद शाह**

योगामृत

कालभैरवासन

सृष्टि-संहार के समय कालभैरव जिस प्रकार का भयंकर रूप धारण करते हैं, इस आसन में ठीक वैसी ही शारीरिक स्थिति होती है । इसलिए इसको सिद्धों ने 'कालभैरवासन' कहा है । **विधि** : दोनों पैरों के बीच एक फुट का अंतर रखकर इस प्रकार खड़े हों कि एक पैर के पीछे दूसरा पैर हो । फिर चित्र में दिखाये अनुसार एक हाथ को आगे और दूसरें हाथ को पीछे करते हुए और मुख को पूर्णतया खोलकर जीभ को बाहर निकालते हुए दोनों आँखों को पूर्णतया खोलकर दोनों भौंहों को देखते हुए, बिना किसी हिलचाल के स्थित रहें । इसे कालभैरवासन कहते हैं । **टिप्पणी** : इस आसन को दोनों आँखों की पलकों को उलटकर भी किया जाता है । इसे पैर बदलकर भी करना चाहिए ।

लाभ : इस आसन के अभ्यास से शरीर में दृढ़ता आती है और आंतरिक बल भी बढ़ता है । इस आसन की यह विशेषता है कि इसके अभ्यास से मनुष्य में निर्भीकता आती है । इस आसन का प्रभाव शरीर की सूक्ष्म नाड़ियों पर भी होता है । यह आसन करते समय प्रतीत होने लगता है कि शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियाँ ऊपर की ओर खिंची जा रही हैं, परिणामस्वरूप शरीर में स्फूर्ति आती है, कांति बढ़ती है तथा मनोवहा नाड़ी को ऊर्ध्वरेता बनाने में मदद मिलती है । इस आसन में बहुत ही आंतरिक बल की अनुभूति होती है । इसके अभ्यास से जिह्वा व गले के रोग और टॉन्सिल्स की तकलीफ में आराम मिलता है । यह आँखों के लिए भी परम उपयोगी माना गया है । इस आसन के अभ्यास से चेहरे पर होनेवाले फोड़े-फुंसियाँ भी ठीक हो जाते हैं । मुख के ऊपर का सिकुड़ा हुआ चर्म भी मुलायम हो जाता है और चेहरे पर अद्भुत कांति आ जाती है । इस आसन का अधिक अभ्यास करने पर सीना चौड़ा तथा सुन्दर हो जाता है ।

(निर्जला एकादशी : ७ जून २००६)

निर्जला एकादशी

युधिष्ठिर ने कहा : जनार्दन ! ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी आती हो, कृपया उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! उसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनंदन व्यासजी करेंगे, क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और वेद-वेदांगों के पारंगत विद्वान हैं ।

तब वेदव्यासजी कहने लगे : दोनों ही पक्षों की एकादशियों के दिन मनुष्य भोजन न करें । द्वादशी के दिन स्नान आदि से पवित्र हो फूलों से भगवान केशव की पूजा करें। फिर नित्यकर्म समाप्त होने के पश्चात् पहले ब्राह्मणों को भोजन देकर अंत में स्वयं भोजन करें। राजन् ! जननाशौच और मरणाशौच में भी एकादशी को भोजन नहीं करना चाहिए ।

भीमसेन बोले : परम बुद्धिमान पितामह ! मेरी उत्तम बात सुनिये । राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव - ये एकादशी को कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि 'भीमसेन ! तुम भी एकादशी को न खाया करो ।' किंतु मैं उन लोगों से यही कहता हूँ कि मुझसे भूख नहीं सही जायेगी ।

भीमसेन की बात सुनकर व्यासजी ने कहा : यदि तुम्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति अभीष्ट है और नरक को दूषित समझते हो तो दोनों पक्षों की एकादशियों के दिन भोजन न करना ।

भीमसेन बोले : महाबुद्धिमान पितामह ! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ । एक बार भोजन करके भी मुझसे व्रत नहीं किया जा सकता, फिर उपवास करके एकदम निराहार तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ ? मेरे उदर में वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है, अतः जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ, तभी यह शांत होती है । इसलिए महामुने ! मैं वर्ष भर में केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ । जिससे स्वर्ग की प्राप्ति सुलभ हो तथा मैं कल्याण का भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक व्रत निश्चय करके बताइये । मैं उसका यथोचित रूप से पालन करूँगा ।

व्यासजी ने कहा : भीम ! ज्येष्ठ मास में सूर्य वृष राशि पर हो या मिथुन राशि पर, शुक्लपक्ष में जो एकादशी हो, उसका यत्नपूर्वक निर्जल व्रत करो । केवल कुल्ला या आचमन करने के लिए मुख में जल डाल सकते हो, उसको छोड़कर किसी प्रकार का जल विद्वान पुरुष मुख में न डाले, अन्यथा व्रत भंग हो जाता है । एकादशी को सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक मनुष्य जल का त्याग करे तो यह व्रत पूर्ण होता है। तदनन्तर द्वादशी को प्रभातकाल में स्नान करके ब्राह्मणों को विधिपूर्वक जल और सुवर्ण का दान करे । इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणों के साथ भोजन करे । वर्षभर में जितनी

एकादशियाँ होती हैं, उन सबका फल निर्जला एकादशी के सेवन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान केशव ने मुझसे कहा था कि 'यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाय और एकादशी को निराहार रहे तो वह सब पापों से छूट जाता है ।'

एकादशी व्रत करनेवाले पुरुष के पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दंड-पाशधारी भयंकर यमदूत नहीं जाते। अंतकाल में पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले और मन के समान वेगशाली विष्णुदूत उस वैष्णव पुरुष को भगवान विष्णु के धाम में ले जाते हैं । अतः निर्जला एकादशी को पूर्ण यत्न करके उपवास और श्रीहरि का पूजन करो । स्त्री हो या पुरुष, यदि उसने मेरु पर्वत के बराबर भी महान पाप किया हो तो वह सब इस एकादशी व्रत के प्रभाव से भस्म हो जाता है । जो मनुष्य उस दिन जल के नियम का पालन करता है, वह पुण्य का भागी होता है । उसे एक-एक प्रहर में कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा दान करने का फल प्राप्त होता सुना गया है । मनुष्य 'निर्जला एकादशी' के दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान श्रीकृष्ण का कथन है । 'निर्जला एकादशी' को विधिपूर्वक उत्तम रीति से उपवास करके मानव वैष्णवपद को प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य एकादशी के दिन अन्न खाता है, वह पाप का भोजन करता है । इस लोक में वह चांडाल के समान है और मरने पर दुर्गति को प्राप्त होता है।

जो ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में एकादशी को उपवास करके दान करेंगे, वे परम पद को प्राप्त होंगे । जिन्होंने एकादशी को उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होने पर भी सब पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।

कुन्तीनंदन ! 'निर्जला एकादशी' के दिन श्रद्धालु स्त्री-पुरुषों के लिए जो विशेष दान और कर्तव्य विहित हैं, उन्हें सुनो : उस दिन जल में शयन करनेवाले भगवान विष्णु का पूजन और धेनु का दान उचित है । पर्याप्त दक्षिणा और भाँति-भाँति के मिष्टान्नों द्वारा यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिए। ऐसा करने से ब्राह्मण अवश्य सन्तुष्ट होते हैं और उनके सन्तुष्ट होने पर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं । जिन्होंने शम, दम और दान में प्रवृत्त हो श्रीहरि की पूजा तथा रात्रि में जागरण करते हुए इस 'निर्जला एकादशी' का व्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियों को व आनेवाली सौ पीढ़ियों को भगवान वासुदेव के परम धाम में पहुँचा दिया है । 'निर्जला एकादशी' के दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शय्या, सुन्दर आसन, कमंडलु तथा छाता दान करना चाहिए । जो श्रेष्ठ तथा सुपात्र ब्राह्मण को जूता दान करता है, वह सोने के विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । जो इस एकादशी की महिमा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा उसका वर्णन करता है, वह स्वर्गलोक में जाता है । चतुर्दशीयुक्त अमावस्या को सूर्यग्रहण के समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है, वही फल इसके श्रवण से भी प्राप्त होता है। पहले दंतधावन करके यह नियम लेना चाहिए कि 'मैं भगवान केशव की प्रसन्नता के लिए एकादशी को निराहार रहकर आचमन के सिवा दूसरे जल का भी त्याग करूँगा ।' द्वादशी को देवेश्वर भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए । गंध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्र से विधिपूर्वक पूजन करके जल के घड़े के दान का संकल्प करते हुए निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करे :

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक ।
उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥

'संसारसागर से तारनेवाले हे देवदेव हृषीकेश ! इस जल के घड़े का दान करने से आप मुझे परम गति की प्राप्ति कराइये।' **(पद्म पु., उ. खंड : ५३.६०)**

भीमसेन ! 'निर्जला एकादशी' के दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को शक्कर के साथ जल के घड़े का दान करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य भगवान विष्णु के समीप पहुँचकर आनन्द का अनुभव करता है। तत्पश्चात् द्वादशी को ब्राह्मण-भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार पूर्ण रूप से, इस पापनाशिनी एकादशी का व्रत करता है, वह सब पापों से मुक्त हो अनामय पद को प्राप्त होता है । यह सुनकर भीमसेन ने भी इस शुभ एकादशी का व्रत आरम्भ कर दिया । (पद्म पुराण उ. खंड)

प्रकृति अनुसार आहार-विहार

मनुष्य की प्रकृति में जिस दोष की प्रधानता होती है, उसे बढ़ानेवाले पदार्थों के अधिक सेवन से वह दोष प्रकुपित होकर शीघ्र ही व्याधि को उत्पन्न करता है । जैसे - कफ प्रकृति का व्यक्ति दही, केला, खीर आदि कफप्रकोपक पदार्थों का अधिक सेवन करे तो उसे सर्दी-खाँसी होने की सम्भावना विशेष होती है । सावधानी न रखने पर ये व्याधियाँ उग्र रूप धारण कर लेती हैं व कष्टसाध्य हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में एकाएक अस्पताल में भर्ती कर देते हैं, खामखाह कष्ट भोगते हैं जबकि अंग्रेजी दवाइयों का यह विषय नहीं है । अतः विवेकशील मनुष्य को अपनी प्रकृति का भलीप्रकार निश्चय कर दोषप्रकोपक आहार-विहार के त्याग व दोषशामक आहार-विहार के सेवन से स्वास्थ्य की सुरक्षा करनी चाहिए ।

कफवर्धक आहार-विहार :

मधुर, खट्टे, नमकीन, शीत, स्निग्ध गुणयुक्त व पचने में भारी पदार्थ जैसे - दूध, दही, खीर, गन्ने का रस, मिश्री, नारियल, खजूर, सिंघाड़ा, केला, अमरूद, सीताफल जैसे मधुर फल, शीतल जल आदि के सेवन तथा दिन में शयन, आलस्य, शारीरिक श्रम का अभाव, बार-बार भोजन करने से कफ प्रकुपित होता है ।

बाल्यावस्था, वसंत ऋतु, दिन व रात्रि का प्रथम प्रहर व भोजन के प्रारम्भ में कफ की स्वाभाविक वृद्धि होती है ।

कफशामक आहार-विहार :

तीखे, कड़वे, कसैले, रूखे, उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थ जैसे - अदरक, सोंठ, काली मिर्च, हल्दी, अजवायन, पीपरामूल, जौ, चना, धाणी, मुरमुरे; सब्जियों में सूरन, सहिजन, बैंगन, करेला, मेथी, गाजर; दालों में अरहर, चना, मूँग; तिल व सरसों का तेल तथा उपवास, तेज चलना, दौड़ना, कसरत, आसन, प्राणायाम, आँवला-बेसन का उबटन, उष्णोदक कफ का शमन करते हैं ।

कफशामक द्रव्यों में शहद सर्वश्रेष्ठ है ।

पित्तप्रकोपक आहार-विहार :

तीखे, खट्टे, नमकीन, उष्ण-तीक्ष्ण, दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ जैसे - दही, खट्टी छाछ, कच्चा आम, अदरक, लहसुन, मिर्च, काली मिर्च, अजवायन, तज, राई, हींग, सरसों, तिल, तिल तेल, पुदीना, सहिजन, पुरानी मूली, टमाटर, इमली, खट्टे फल, संकरित अनाज, तले हुए, नमकीन, खमीरीकृत व बेकरी के पदार्थ, फास्टफूड, बर्फ, सूखे मेवों का अधिक सेवन, अति उपवास, अति भ्रमण, धूप में घूमना, अग्नि के निकट काम करना, रात्रि जागरण, स्त्री-सहवास, क्रोध, शोक व भय पित्त को प्रकुपित करते हैं ।

युवावस्था, शरद ऋतु, मध्याह्न काल, मध्य रात्रि व भोजन के तीन घंटे बाद तक पित्त का स्वाभाविक प्रकोप होता है ।

पित्तशामक आहार-विहार :

मधुर, कसैले, कड़वे रसयुक्त, शीत-स्निग्ध पदार्थ जैसे - दूध, घी, जौ, गेहूँ, साठी के चावल, मिश्री, मुनक्का, खजूर, फालसा, अंजीर, नारियल, केला आदि मीठे फल; मोठ, अरहर व मूँग की दाल; सब्जियों में बथुआ, तोरई (तोरी), कंकोड़ा, चौलाई, पालक, पोई, पका(पीला) पेठा (हरे पेठे से हानि होती है), लौकी, करेला; मसालों में जीरा, धनिया, हल्दी; धातुओं में चाँदी पित्तशामक है । जलाशय के पास बैठने, शीतल चाँदनी व शीतल वायु के सेवन, सुगंधित पुष्पमाला धारण करने से पित्त शांत होता है ।

पित्तशामक द्रव्यों में गाय का घी सर्वश्रेष्ठ है ।

वातप्रकोपक आहार-विहार :

कड़वे, तीखे, कसैले, रूखे, शीत गुणयुक्त व पचने में हलके पदार्थ वायु की वृद्धि करते हैं । दालों में चना, मटर, चौलाई, राजमा, मसूर, तुअर, मूँग; अनाज में जौ, मकई, बाजरा, सामा; सब्जियों में सेम, आलू, पत्तागोभी, फूलगोभी, शकरकंद, ग्वारफली, लौकी, अरवी, सूखे शाक; फलों में तरबूज, ककड़ी, खरबूजा, खसखस; धातुओं में लौह; उपवास, परिमित भोजन, विषम आहार, अति शारीरिक या मानसिक श्रम, विचारमग्नता, सतत भाषण, कार्य व्यग्रता, वाहनों से अथवा पैदल अधिक घूमना, तैरना, अति व्यायाम, भूख-प्यास-मल-मूत्र

आदि वेगों का निरोध, पंचकर्मों का अति योग, रस-रक्तादि धातुओं का क्षय, अति शीत वायु का सेवन, अति शोक, भय, चिंता, रात्रि जागरण - ये वातप्रकोपक हैं ।

वृद्धावस्था, वर्षा ऋतु, प्रातः व सायंकाल, भोजन के तीन घंटे बाद वायु का स्वाभाविक प्रकोप होता है ।

वायुशामक आहार-विहार :

मधुर, खट्टे, नमकीन, स्निग्ध, उष्ण व पचने में भारी पदार्थ जैसे - सूखे मेवे, गेहूँ, उड़द, कुल्थी; सब्जियों में परवल, बैंगन, भिंडी, सहिजन की फलियाँ तथा फूल, कंकोड़ा, गाजर, सूरन, पुनर्नवा, जीवंती, पोई, मेथी, सुआ, बथुआ, चांगेरी, पुदीना, लहसुन, अदरक; मसालों में मेथीदाना, हींग, जीरा, राई, काली मिर्च, सरसों, धनिया, अजवायन; तेलों में तिल व सरसों का तेल; धातुओं में चाँदी वायुशामक है । निश्चिंतता, सुखपूर्वक रहना, विश्रांति, निर्वात (वायु का ज्यादा प्रवाह न हो) गृह में निवास, मालिश व बस्ती चिकित्सा से वायु शांत होती है ।

वायुशामक द्रव्यों में तिल का तेल सर्वश्रेष्ठ है ।

त्रिदोषप्रकोपक पदार्थ : आलू, पुरानी मूली, खट्टी दही व छाछ, सरसों का साग, दूध को विकृत कर बनाये गये पदार्थ, विरुद्ध आहार ।

त्रिदोषशामक पदार्थ : गौदुग्ध, साठी के चावल, मीठा अनार व अंगूर, आँवला, जीवंती, बथुआ, पका पेठा, ताजी कोमल मूली, सैंधव नमक, गौमूत्र, पक्व कपित्थ (क्रैथ), परवल, धातुओं में सुवर्ण त्रिदोषशामक है ।

जो व्यक्ति जिस देश का है उस देश में ऋतु अनुसार उत्पन्न होनेवाले अनाज-फल-औषधि उसकी प्रकृति के लिए स्वाभाविक ही अनुकूल होते हैं ।

संत श्री आसारामजी आश्रमों व समितियों द्वारा पूज्य बापूजी के अवतरण-दिवस के निमित्त किये गये सेवाकार्य

संकीर्तन यात्राएँ : अमदावाद, दिल्ली, सूरत, बड़ौदा, राजकोट, मेहसाणा, वापी, बायड, लुधियाना, जालंधर, पानीपत, हैदराबाद, नागपुर, नासिक, गोंदिया, सोनगीर, सोलापुर, साक्री, कोटा, उदयपुर, जोधपुर, निवाई, भोपाल, ग्वालियर, छिन्दवाड़ा, जबलपुर, आगरा, कानपुर, वाराणसी, जौनपुर, राँची, रायपुर । **अनाज-वितरण** : अमदावाद, सूरत, धरमपुर, नासिक, उदयपुर, लखनऊ, वाराणसी, बड़नगर, कोटद्वार, राँची व नागपुर में अनाज एवं फल वितरण किया गया । निवाई, सोनगीर में ग़रीबों में अन्न, तेल, वस्त्र वितरण किया गया । **भंडारा** : अमदावाद, मेहसाणा, वापी, भावनगर, बायड, हैदराबाद, नागपुर, सोलापुर, नासिक, गोंदिया, प्रकाशा, उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, भोपाल, ग्वालियर, छिन्दवाड़ा, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, आगरा, जौनपुर, लुधियाना, जालंधर, पानीपत, रायपुर । **मरीजों में फल-वितरण** : अमदावाद, सूरत, धरमपुर, नासिक, प्रकाशा, शहादा, हैदराबाद, उदयपुर, कोटा, जोधपुर, छिन्दवाड़ा, ग्वालियर, लखनऊ, वाराणसी, आगरा, कानपुर, जालंधर, रायपुर, राँची, बड़नगर । **छाछ/शर्बत वितरण** : अमदावाद, सूरत, बड़ौदा, राजकोट, बंगलौर, सोलापुर, नासिक, उदयपुर, जोधपुर, भोपाल, जबलपुर, वाराणसी, आगरा, रायपुर, राँची, हैदराबाद, लुधियाना, बड़नगर, कोटद्वार । **सत्साहित्य-वितरण** : अमदावाद, सूरत, धरमपुर, कोटा, जोधपुर, उदयपुर, लखनऊ, आगरा, हैदराबाद, राँची, खूँटी । **महामृत्युंजय मंत्र से हवन** : अमदावाद, राजकोट, आगरा, जौनपुर, ग्वालियर, उदयपुर, नागपुर, रायपुर । **विद्यार्थियों में नोटबुक-वितरण** : अमदावाद, वापी, सोलापुर, लखनऊ, लुधियाना, जोधपुर, बड़नगर । **जयपुर (राज.)** में संत श्री आसारामजी गुरुकुल का उद्घाटन किया गया ।

- दि. १९ से २३ अप्रैल तक प्राप्त जानकारी के अनुसार ।

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

२४ मार्च की शाम से २५ मार्च की दोपहर तक के २ सत्र के सत्संग-प्रवचन से छोटा उदेपुर, जि. बड़ौदा झूम उठा । इस भूमि पर पूज्यश्री का पहली बार पदार्पण हुआ । ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी के रू-बरू प्रथम दर्शन से ही यहाँ के श्रद्धालु बापू के दिवाने हो गये । आध्यात्मिक पिपासा के धनी छोटा उदेपुर के निवासियों का इस दिन बड़ा भाग्य ही उदय हुआ, जिससे आत्मरामी पूज्य बापूजी के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्संग व भंडारे का भी सुअवसर प्राप्त हुआ । २५ मार्च को 'पापमोचनी एकादशी' के पावन दिन मंत्रदीक्षा पाने का सौभाग्य भी यहाँ के श्रद्धालुओं को प्राप्त हुआ ।

२५ मार्च की दोपहर छोटा उदेपुर के भक्तों को हरिनाम के रंग में रँगने के बाद पूज्यश्री आलीराजपुर, जि. झाबुआ (म.प्र.) पहुँचे । जहाँ शाम से ही सत्संग आयोजित था । २६ मार्च की दोपहर को यहाँ गरीब-गुरबों को, आदिवासियों को वस्त्र, बर्तन आदि जीवनोपयोगी सामग्री व नकद राशि प्रदान की गयी ।

विशाल भंडारे के साथ ही यहाँ के कार्यक्रम की पूर्णाहुति हुई और पूज्यश्री बड़वानी (म.प्र.) पहुँचे, जहाँ २६ मार्च की शाम पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसास्वादन बड़वानी के बड़भागी भक्तों ने किया ।

ब्रहमगिआनी का दरसु बडभागी पाईऐ ।

इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए सारा बड़वानी ही उमड़ पड़ा ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के दर्शन करने ।

२७ मार्च की दोपहर यहाँ पूर्णाहुति कर पूज्यश्री राणापुर, जि. झाबुआ (म.प्र.) पहुँचे । २७ मार्च की शाम भक्ति, योग व ज्ञान से भरा पूज्यश्री का हृदय राणापुर के सरल, निर्दोष श्रद्धालुओं को देखकर छलक पड़ा । वेदांत की गूढ़ बातों को सरल, लोकभोग्यशैली में समझाकर उनकी अनुभूति के द्वार खोलने की कुंजी भी अनुभवनिष्ठ पूज्य बापूजी ने अपनी अनुभवसंपन्न वाणी में बतायी ।

सत्संग व सद्गुरु आश्रय का महत्त्व बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''दुनिया की सारी संपत्ति अपने पास हो लेकिन जीवन में यदि सत्संग नहीं है, सद्गुरु का आश्रय नहीं है तो वह मनुष्य अभागा है । पापी-से-पापी व्यक्ति भी भगवन्नाम-जप, संतदर्शन व सत्संग से महानता को छू सकता है । महान परमात्मा को भी पा सकता है ।''

२८ मार्च को गरीबों, आदिवासियों को वस्त्र, अनाज, नकद दक्षिणा आदि के वितरण व भंडारे के साथ यहाँ पूर्णाहुति हुई ।

''कमाल हों गया''

पूर्णाहुति के पूर्व दोपहर का सत्र चल रहा था । लगभग १ बजे के आस-पास अचानक बहुत जोरों की आँधी-बवंडर ने ऐसा उग्र रूप दिखाया कि मंडप के बीच में लगनेवाली ४५ फुट चौड़ी लोहे की परली कपड़ेसहित गगनगामी... ऐसा लग रहा था मानों थोड़ी ही देर में पूरा मंडप उड़ जायेगा, लोहे के खंभों और परली में खड़ा मंडप न जाने कितने लोगों की जान लेगा या हानि पहुँचायेगा ।

व्यासपीठ पर विराजमान पूज्यश्री यह सब देख रहे थे । भगवद्भाव से पूज्यश्री के श्रीमुख से ३-४ बार प्रीतिपूर्वक निकला : 'हरि ॐ शांति !'

फिर कमाल हो गया ! तूफान एकदम शांत हो गया और प्रेमस्वरूप ईश्वर की लीला का चमत्कार उपस्थित पचासों हजार लोगों को देखने को मिला । आश्चर्य को भी आश्चर्य ! किसीको भी खरोंच तक नहीं आयी ! इतनी भारी लोहे की परली को मानों अदृश्य परमात्म-सत्ता ने धीरे-धीरे नीचे ला दिया, किसीको लगी नहीं ! इस परमात्म-कृपा के दृश्य के पचासों हजार लोग साक्षी रहे ।

हे भक्तों के भगवान ! कैसी करुणा-वरुणा से भरी है आपकी व्यवस्था ! हे सर्जनहार ! हे देवेश्वर ! हे परमेश्वर ! हे सर्वेश्वर ! हे विश्वेश्वर ! हे विश्वाधार ! हे जगदीश्वर ! तुम्हें अनन्त-अनन्त प्रणाम । हे दयानिधे ! तुम्हारी इस लीला को देख के भयावह बवंडर तुम्हारे सुखदायी सुमिरन में सहर्षित कर गया ।

हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी चेटीचंड के अवसर पर अमदावाद आश्रम में चार दिवसीय 'ध्यान योग साधना शिविर' संपन्न हुआ । ३० मार्च से २ अप्रैल तक चले इस 'शक्तिपात साधना शिविर' में गुजरात के अलावा भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों से बड़ी संख्या में शिविरार्थियों का आगमन हुआ । श्रद्धालु शिविरार्थियों की विशाल संख्या से आश्रम-प्रांगण नन्हा साबित हुआ । हालाँकि आश्रम में विशाल, स्थायी सत्संग-भवन निर्मित है, तथापि साबरमती नदी के तट पर उससे भी बड़ा अस्थायी पंडाल बनाया गया था । दोनों ही पंडाल खचाखच भरे रहे मानव-मेदनी से । सभीकी आन्तरिक इच्छा थी ब्रह्मवेत्ता पूज्य गुरुवर के करीब से दर्शन की । सभीकी यह साध यहाँ पूरी हुई । पूज्य बापूजी व्यासपीठ से सत्संग-ज्ञान प्रसाद बाँटकर, ध्यानरूपी तीर्थ में शिविरार्थियों को सराबोर करके भक्तों के करीब, उनके बीच पहुँच जाते । अपने समक्ष साक्षात् भगवद्स्वरूप गुरुवर का दर्शनामृत पाकर भक्तों के नयनों से नयनामृत-भावामृत बह निकलता । शास्त्रवर्णित अष्टसात्त्विक भावों में से कोई श्रद्धालु भक्त किसी भाव से तो कोई किसी भाव से भर जाता । यह सब होता संध्या के ध्यान के माहौल में । जितना

संभव हो सका, उन दृश्यों को कैमरे में कैद करने का प्रयास किया गया, जो 'चेटीचंड ध्यान योग शिविर' के नाम से विडियो सी.डी., ऑडियो कैसेट व MP3 में समिति द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे हैं ।

अभी इन प्रसार-माध्यमों से लाभ उठाकर निकट भविष्य में रू-बरू लाभान्वित होने की तैयारी कर सकते हैं ।

२ अप्रैल को 'दिल्ली दरवाजा समिति' (अमदावाद) एवं 'बाल संस्कार केन्द्र' के बच्चों द्वारा 'श्री झुलेलाल अवतरण-दिवस' पर सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी व भक्त-चरित्र का मंचन किया गया ।

१२ से १४ अप्रैल तक सत्संग-दर्शनोत्सव का आयोजन पुरातन नगरी उज्जैन में हुआ । हनुमान जयंती व चैत्री पूर्णिमा के पावन अवसर पर देश के कोने-कोने से आये हजारों पूनम व्रतधारी भक्तों ने पूज्य गुरुवर के पावन दर्शन कर पंचगव्य पान किया और पूनम व्रत खोला ।

२ वर्ष बाद पूज्यश्री के यहाँ आगमन से सत्संगियों का हुजूम उमड़ पड़ा, जिससे मिनी कुंभ का नजारा नजर आया । ४ कुंभ नगरियों में से एक प्रमुख नगरी और ७ मोक्षदायिनी पुरियों में से एक प्रमुख पुरी उज्जैन की महिमा बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''यह स्थल वह पावन स्थल है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने शिक्षा प्राप्त की । अपना आश्रम भी भगवान श्रीकृष्ण की शिक्षास्थली का ही भाग है ।''

श्री हनुमान जयंती के पावन पर्व पर बधाई देते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''श्री हनुमानजी आत्मविश्रांति पाये हुए और सद्गुणों की खान हैं । पवनपुत्र की आराधना हिन्दुओं के अलावा यदि मुसलमान, सिख, ईसाई भी करें तो उन्हें भी समान रूप से लाभ होगा । श्वास १ मिनट भीतर रोककर '**नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा** ॥' मन में जपें और ४० सेकंड श्वास बाहर रोककर जप करने से सभी जातियों के लोगों को स्वास्थ्य-लाभ होगा ।

बड़नगर, जि. उज्जैन (म.प्र.) में १५ अप्रैल की शाम व १६ अप्रैल को सत्संग संपन्न हुआ । २२ घंटे पूर्व ही निर्धारित इस कार्यक्रम में सारा बड़नगर व आस-पास के गाँव उमड़ पड़े थे । सत्संग-श्रवण कर रहे श्रोताओं में से हजारों भाइयों ने पूज्यश्री के समक्ष गुटखा, पान मसाला आदि व्यसन-त्याग का संकल्प लिया । महिलाओं ने भी अपवित्र सौन्दर्य-प्रसाधनों के त्याग का संकल्प लिया ।

भारतीय संस्कृति में गुरु को दक्षिणा देने का रिवाज है । पूज्य बापूजी ने बड़नगर में व आज तक आयोजित विभिन्न सत्संग-कार्यक्रमों में श्रोताओं से दक्षिणा के रूप में व्यसन-त्यागरूपी दक्षिणा की ही माँग की है । जिससे आज तक देश में लाखों परिवार व्यसनमुक्त हुए हैं । लाखों-लाखों परिवारों की खोयी हुई खुशियाँ व स्वास्थ्य वापस मिला है तो लाखों लोग भावी बीमारियों से बचकर सुखी जीवन बिता रहे हैं । करोड़ों लोग भगवद्रसमय जीवन में प्रवेश पा चुके हैं । इससे व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में काफी मदद मिल रही है ।

भारत सरकार व राज्य सरकारें व्यसनमुक्ति, पर्यावरण व जनसंख्या नियंत्रण, स्वास्थ्य आदि विषयों पर दूरदर्शन व अन्य प्रचार माध्यमों पर पता नहीं किन-किन लोगों को लेकर प्रचार करवाती हैं । यदि इन मुद्दों पर सरकार लोकलाड़ले संतों का फायदा ले तो निश्चय ही बहुत व्यापक असर होगा । भारत धर्मप्रधान देश है । यदि सरकार धर्मसत्ता का सदुपयोग करे तो गहन समस्याओं के भी आसान हल हो सकते हैं ।

१८ व १९ अप्रैल पंचेड़ आश्रम (रतलाम, म.प्र.) के नाम रहे । चैत्रवद षष्ठी अर्थात् पूज्य बापूजी का अवतरण-दिवस । यह वह पावन तिथि है, जिस दिन इस मृत्युलोकवासियों को अपनी अमरता का संदेश देनेवाले सद्गुरुदेव का अवतरण हुआ ।

१९ अप्रैल को इस शुभ अवसर पर पूरे भारतवर्ष की समस्त योग वेदांत सेवा समितियों व आश्रमों द्वारा स्थानीय स्तर पर कीर्तन यात्रा, भंडारा, भजन-कीर्तन, वस्त्रादि वितरण आदि का आयोजन कर जन्मोत्सव मनाया गया एवं जनहितार्थ निम्न सेवाकार्य किये गये :

* ग्यारह लाख किलो अनाज का गरीबों, अनाश्रितों, विधवाओं में निःशुल्क वितरण ।

* एक करोड़ इक्कीस लाख लोगों में निःशुल्क छाछ-वितरण ।

* तीन लाख तीस हजार रोगियों में फल एवं सत्साहित्य का निःशुल्क वितरण ।

* छः लाख नशामुक्ति पोस्टरों का निःशुल्क वितरण ।

* आठ लाख गरीब विद्यार्थियों में सुवाक्यों से युक्त नोटबुकों का निःशुल्क वितरण ।

१८ अप्रैल को अवतरण-दिवस की पूर्व संध्या पर रतलाम में भव्य संकीर्तन यात्रा श्री सुरेशानंदजी के संकीर्तनानंद के साथ निकाली गयी । उस कीर्तन यात्रा का रतलाम में जगह-जगह आरती से स्वागत किया गया व रतलाम के समस्त अखबारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

'ॐ' के अनहद नाद एवं ठहाकों की गूँज के साथ बापू के प्रवचन प्रारंभ

उज्जैन (म.प्र.), १२ अप्रैल : जीवन में नृत्य भी जरूरी है। नृत्य ही क्रोध व वैर पर विजय दिला सकता है, तभी तो भगवान कृष्ण भी नृत्य करते थे।

सर्वप्रथम तो मंच पर आकर संत श्री आसारामजी महाराज ने हरिॐ व ॐकार शब्द का उद्घोष किया, फिर ऊपर उल्लिखित शब्दों के साथ मंच पर नृत्य करने लगे। पंडाल में बैठे हजारों श्रद्धालु भी मस्त हो अपनी जगह पर ही संतश्री के साथ ताल-से-ताल मिला नृत्य कर उठे। अंकपात क्षेत्र में आयोजित संतश्री के तीन दिवसीय गीता व भागवत प्रवचन का आज शुभारम्भ हुआ। आज शाम को हुए प्रवचनों के लिए श्रद्धालुओं की भारी भीड़ इस तरह उमड़ पड़ी कि लघु कुंभ का-सा दृश्य निर्मित हो गया। प्रवचन स्थल पर तो विशाल पंडाल लगा ही है। इसके पीछे स्थित भोजनशाला भी सुबह से प्रारम्भ हो गयी, जहाँ बाहर से आये श्रद्धालु भोजन कर अपने हाथों से अपनी जूठी थाली धो रहे थे।

बाहर से आये पूनम व्रतधारियों को बस स्टैण्ड व रेलवे स्टेशन से आयोजन स्थल तक लाने के लिए ६ बसों की व्यवस्था की गयी है। बाहर से आये श्रद्धालुओं के लिए गोलामंडी स्थित अग्रवाल व माहेश्वरी धर्मशाला तथा काजीपुरा स्थित बैरागी धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था की गयी थी, मगर श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ने से आयोजक और भी धर्मशालाओं की व्यवस्था में जुटे हैं।

सुबह से ही पंडालसहित पूरा क्षेत्र श्रद्धालुओं की चहल-पहल से सराबोर हो गया था। संतश्री सुबह से अपने आश्रम में ठहरे थे, जहाँ दोपहर में आश्रम से बाहर आकर उनको अल्प समय के लिए भक्तों को दर्शन देने थे। बापू के दर्शन की चाह में उनके भक्त आश्रम में डेरा जमाये रहे। देश के कोने-कोने से आये सेवाभावी स्वयंसेवक आयोजन की व्यवस्था में हर तरह से सहयोग देने के लिए तत्पर नजर आये। शाम ३.३० बजे प्रारम्भ हुए प्रवचन में सर्वप्रथम बापूजी के परम प्रिय शिष्य सुरेशानंदजी ने प्रवचन दिये। उसके पश्चात् बापू लगभग पाँच बजे पधारे और मंच से श्रद्धालुओं को संबोधित कर काँच के चेम्बर में बनी व्यासपीठ पर विराजित हो गये। पूर्णिमा पर लगभग २ लाख और बाहरी श्रद्धालुओं के आने की संभावना को व्यक्त करते हुए बापू ने आयोजकों को पंडाल के विस्तार के निर्देश दिये।

प्रवचनामृत

* कथाकार बोलते हैं तो कथा और संत बोलते हैं तो सत्संग। इससे करोड़ों की वासना मिट जाती है। * जिस इष्टदेव का पूजन करते हैं, उसका नित्य मंत्रजप करें। * नाम-जप से मंगल-ही-मंगल। * भागवत-प्रसंग अनुसार यम व नियम के १२-१२ प्रकार। इनसे अहिंसा, तेज, सत्य, धैर्य आदि गुणों का विकास होता है। * तितिक्षा अर्थात् मानवहित में कष्ट उठाना बहुत बड़ा कार्य। * संतान-प्राप्ति के लिए पारिवारिक जीवन-निर्वाह ठीक मगर असंयत व्यवहार अनुचित। * जिसे छोड़ नहीं सकते वह परमात्मा, जिसे साथ रख नहीं सकते वह संसार। * परमात्मा से प्रेम करो। अन्य में आसक्ति करोगे तो झगड़े ही होंगे। * 'मैं'पन को त्यागकर साधना करें तो भगवान मिलते हैं। * उज्जैन का महत्त्व एक-दो पुराणों में ही नहीं, सभी शास्त्रों में है। * भगवान को अपने चेले का चेला बनाने की क्षमता मनुष्य में है। * अपनी आत्मा से बड़ा तीर्थ नहीं। * 'मैं तो आनंदस्वरूप परमात्मा का हूँ और वे मेरे'-यह सोचो तो कोई दुःख ही नहीं रहेगा।

अनुभव कुछ भक्तों के

* मैं शांति की तलाश में था। बापू के बारे में जानकर प्रभावित तो था। लूनावाड़ा में मिले तो शांति मिली। अब मन पूरी तरह शांत रहता है।

- पी.पी. पटेल (५७ वर्ष), लूनावाड़ा।

* किसी तरह सम्पर्क में आकर दीक्षा ली। मन की चंचलता व कुविचारों से मुक्त हुआ।

- कन्हैया (३१ वर्ष), दिल्ली।

* वन-विभाग में ठेकेदार था। शिकार, मांसाहार सहित कई बुराइयाँ थीं। मित्र के कारण बापूजी का सत्संग मिला, अब सही राह पर हूँ।

- आलोक चौहान (५४ वर्ष), शिवपुर, मध्यप्रदेश।

* 'ऋषि प्रसाद' से जानकारी मिली। सपने में लगा जैसे किसीने बुलाया। जागकर रेलवे स्टेशन पहुँचा तो वहाँ बापू मिल गये। तभी से भाव-विभोर हो ध्यान में निमग्न हूँ।

- एस.बी. सिंह, इलाहाबाद (उ.प्र.)।

* पेट के अल्सर से दुःखी था। इलाज के बाद भी लाभ नहीं था। बापू की वी.सी.डी. देखी। स्वप्न में बापू आये और छुरे से ऑपरेशन किया। अगले दिन सब ठीक। तभी से...

- देवीप्रसाद राउत (४९ वर्ष), नागपुर (महाराष्ट्र)।

* टी.वी. पर प्रवचन देखे थे। कैंसर से पीड़ित बहन को आशीर्वाद दिलाने गयी थी। बापू का नाम-स्मरण कर दर्शन किये। रिपोर्ट नार्मल हो गयी।

- कल्पना वनकर (२७ वर्ष), यवतमाल (महाराष्ट्र)।

* गलत संगति से बेटा बिगड़ भी गया था व गंभीर बीमार भी था। बापू की तस्वीर सिरहाने रखी तो लाभ मिला।

- गायत्री चतुर्वेदी (४८ वर्ष), पटना (बिहार)।

- **दैनिक अवन्तिका** समाचार पत्र से